श्व दर्शन



कार्यालय — प्रयाग

देश-दर्शन

प्रत्येक अङ्क में प्रायः निम्नलिखित विषय रहेंगे जो आवश्यकतानुसार घटाये बढ़ाये जा सकेंगे :—

१—देश का आकार, विस्तार, बनावट, दृश्य। २—जलवायु और उपज। ३—पालतू और जंगली जानवर। ४—कारबार। ५—व्यापार, बाज़ार, मेला। ६—जनसंख्या और जातियां। ७—शिक्षा। ८—पुराने समय पर एक नज़र। ९—वर्तमान शासन। १०—रहन-सहन। ११—भाषा, कहानी। १२—देखने योग्य शहर। १३—गांव का जीवन। १४—खेल कूद, त्योहार।

प्रत्येक देश का वर्णन प्रायः निजी यात्रा के आधार पर भारतीय दृष्टिकोण से लिखा जायगा। इस माला में निम्नलिखित देश रहेंगे :—

भारतवर्ष—१—लंका, २—बरमा, ३—आसाम, ४—बंगाल, ५—बिहार, ६—उड़ीसा, ७—आन्ध्र देश, ८—तामिल, ९—केरल, १०—ट्रावनकोर, ११—कुर्ग, १२—मैसूर, १३—हैदराबाद, १४—गोआ, १५—बम्बई-महाराष्ट्र, १६—मध्यप्रान्त, १७—काठियावाड़, १८—गुजरात, १९—सिन्ध, २०—बलोचिस्तान, २१—पंजाब, २२—पटियाला, २३—जोधपुर, २४—जैपुर, २५—बीकानेर, २६—अजमेर, २७—उदयपुर, २८—कोटा, २९—भरतपुर, ३०—अलवर, ३१—ग्वालियर, ३२—इन्दौर, ३३—रीवाँ, ३४—काश्मीर, ३५—नैपाल, ३६—भूटान, ३७—शिकम, ३८—गढ़वाल, ३९—अवध, ४०—संयुक्तप्रान्त, ४१—पांडिचेरी, ४२—अंडमान, निकोबार, लका द्वीप, मालद्वीप।

एशिया—१—जापान, २—चीन, ३—कोरिया, ४—मंचूरिया, ५—मंगोलिया, ६—चीनी तुर्किस्तान, ७—तिब्बत, ८—साइबेरिया, ९—रूसी तुर्किस्तान, १०—जार्जिया, ११—आर्मेनिया, १२—टर्की १३—सिरिया, १४—पेलेस्टाइन, १५—इराक, १६—अरब, १७—ईरान, १८—मलय प्रायद्वीप और सिंगापुर, १९—स्याम, २०—जावा, २१—बोर्नियो, २२—फिलीपाइन द्वीपसमूह, २३—अफ़गानिस्तान, २४—किरगीज प्रजातन्त्र।

योरुप—१—आयरलैंड, २—ब्रिटेन, ३—फ्रांस, ४—हालैंड, ५—बेल्जियम, ६—डेनमार्क, ७—नार्वे ८—स्वीडन, ९—आइसलैंड, १०—फिनलंड, ११—रूस, १२—यूक्रेन, १३—पोलैंड, १४—रूमानिया, १५—बल्गेरिया, १६—लिथुएनिया, लैटबिया और एस्थोनिया,

मार्च १९३९] # देश-दर्शन [चैत्र १९९६

(पुस्तकाकार सचित्र मासिक)

संख्या १] [वर्ष १

सम्पादक

पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०

प्रकाशक

भूगोल-कार्यालय, इलाहाबाद

Annual Subs.	Rs. 4/-	वार्षिक मूल्य	४)
Foreign	Rs. 6/-	विदेश में	६)
Single copy	As. -/6-	एक प्रति	।=)

विषय-सूची

सम्पादकीय वक्तव्य

"भूगोल" के होते हुए भी **देश-दर्शन** जैसे पुस्तकाकार मासिक पत्र की आवश्यकता बहुत समय से प्रतीत हो रही थी। हमारे देशवासियों को दूसरे देशों का बहुत कम ठीक ठीक ज्ञान हो पाता है। जिस छोटी उम्र में वे दूसरे देशों का हाल जानने के लिये उत्सुक रहते हैं उस उम्र में उन्हें उपयोगी भौगोलिक साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसी कमी को दूर करने के लिये एक देश का संक्षिप्त लेकिन सर्वांगपूर्ण विवरण एक अंक में देने की योजना की गई है। भाषा इतनी सरल रक्खी गई है कि साधारण पढ़े लिखे देहाती भाई और मिडिल स्कूल के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकें। चित्रों की अधिकता होने से कम अवकाश वाले सज्जन भी पन्ने उलट कर कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अधिक चित्र होने पर भी वे इस ढंग से चुने गये हैं कि मनोविनोद के साथ वे शिक्षाप्रद भी हों और समूचे देश के भिन्न भिन्न अंगों का स्वरूप पाठक के सामने रख दें।

जिन देशों में मैं घूम चुका हूँ उनका वर्णन पहले किया जावेगा। जिन देशों में मुझे अब तक जाने का सौभाग्य नहीं मिला है उनकी बारी कुछ वर्षों बाद आवेगी। यदि इस बीच में देशवासियों ने **देश-दर्शन** को अपनाया तो ऐसा विचार है कि छूटे हुए देशों का वर्णन वहीं बैठकर लिखा जावे। जिससे प्रत्येक देश के वर्णन में जीवन हो और सच्चाई के साथ साथ भारतीय दृष्टिकोण की छाप रहे।

देश-दर्शन का प्रथमाङ्क (लंका-दर्शन) आपके सामने है। अगला इराक़ (मेसोपोटामिया) और मई में पेलेस्टाइन अंक रहेगा। इस प्रकार एक महीने में किसी न किसी एक देश का वर्णन रहेगा।

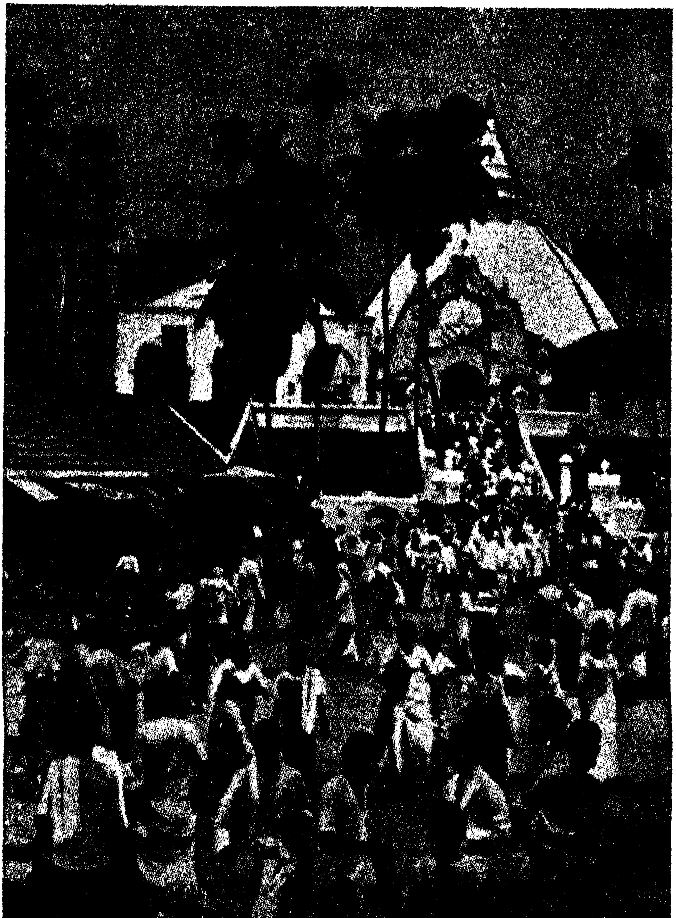
जितनी चित्र संख्या, पृष्ठ-संख्या आदि लंका-दर्शन में हैं प्रायः उतनी ही आगे वाले अंकों में भी रहेगी। स्थायी रूप से इस काम को चलाने के लिये कम से कम दो हजार ग्राहकसंख्या चाहिये। आशा है यह संख्या शीघ्र ही पूरी हो जायगी।

देश-दर्शन का प्रथमांक जनवरी में प्रकाशित होने वाला था। लेकिन रजिस्ट्रेशन नम्बर की देरी हो जाने के कारण मार्च (चैत्र) मास से इसका आरम्भ किया जा रहा है। इस प्रकार ग्राहकों का वर्ष इस मार्च में आरम्भ होकर फर्वरी (फाल्गुन) १९४० में समाप्त होगा।

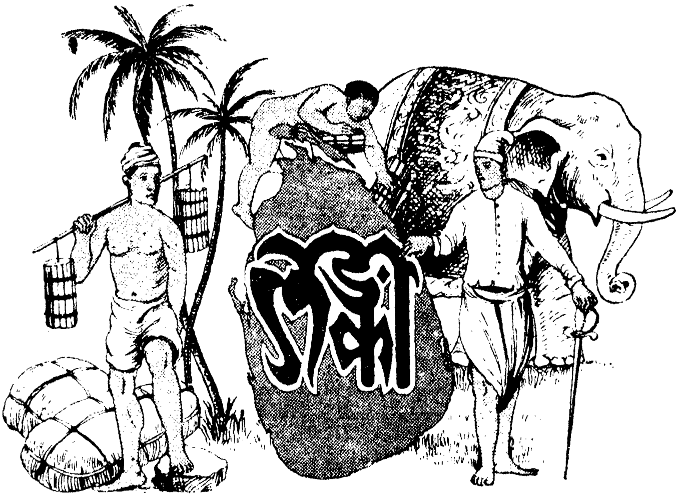
देश-दर्शन आरम्भ करने में श्री० बालकृष्ण पांडे, प्रिन्सिपल कान्य-कुब्ज इन्टर कालेज, लखनऊ, श्रद्धेय टंडन जी, पूज्य काका साहेब कालेलकर जी, माननीय रविशंकर जी शुक्ल (प्रधान मन्त्री, मध्य प्रान्त) से विशेष रूप से सहायता मिली है। मैं इन चारों सज्जनों का विशेष रूप से ऋणी हूँ। इस सम्बन्ध में मैं उन सब मित्रों और सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ जिन्होंने ग्राहक बन कर देश-दर्शन की सहायता की है।

विनीत

रामनारायण मिश्र



लंका के जलूस का एक दृश्य



स्थिति

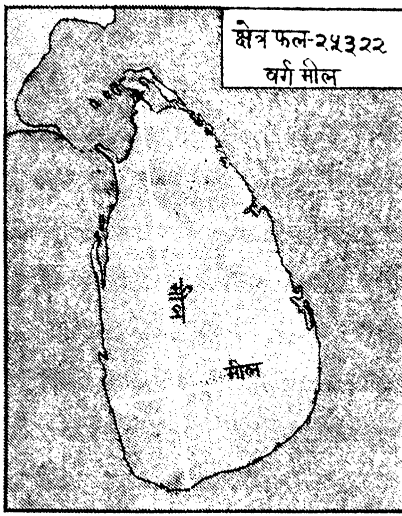
लंका के नाम से प्रत्येक हिन्दुस्तानी परिचित होगा। हर साल दशहरा में लंकाविजय का दृश्य दिखाया जाता है। श्री रामचन्द्र के समय से हिन्दुस्तान और लंका का अटूट सम्बन्ध चला आता है। सम्राट अशोक ने लंका में बौद्ध धर्म के फैलाने का काम अपने प्यारे बेटे और लड़की को सौंपा था। ऐतिहासिक सम्बन्ध के साथ लंका और हिन्दुस्तान में भौगोलिक सम्बन्ध भी गहरा है। दक्षिण-भारत का रामेश्वरम् द्वीप और लंका से मिला हुआ मनार द्वीप दोनों एक दूसरे के पास पास हैं। इन दोनों छोटे द्वीपों के बीच में एकदम अगाध

जल नहीं है। बीच बीच में रेतीले टीले और पथरीली चट्टानें हैं। इस को लोग अक्सर रामसेतु (एडम्सब्रिज) कहते हैं। इस ओर लंका और दक्षिणी हिन्दुस्तान की मिट्टी, चट्टान, वनस्पति, जलवायु और उपज में विलक्षण समानता है। अगर कोई मनुष्य रामनद या रामेश्वर के जंगली भाग में सोता हो और उसको बिना जगाये हुये उसकी चारपाई किसी प्रकार (हवाई जहाज़ से) उत्तरी लंका के जंगल में रख दी जावे तो जागने पर उसे यह पता न लगेगा कि वह लंका में है या हिन्दुस्तान में है।

रामेश्वरम् द्वीप के सिरे पर धनुष्कोटि नाम का अन्तिम रेलवे स्टेशन है। यहां दक्षिण भारत की रेलवे का सिरा है। सिरे के पास ही छोटा जहाज़ माल और मुसाफिरों को तलेमनार (लंका) ले जाने के लिये खड़ा रहता है। जहाज़ हर रोज़ छूटता है। सीधा रास्ता २० मील से अधिक नहीं है। कई भागों में उथला जल है। डूबी हुई चट्टानें और भी अधिक खतरनाक हैं। इस लिये जहाज़ को बड़ी सावधानी से चलना पड़ता है। रास्ते में जहाज़ को ढाई घंटे लग जाते हैं। तूतीकोरन और कोलम्बो के बीच का समुद्री मार्ग अधिक लम्बा है। इसमें लगभग

१२ घंटे लग जाते हैं। तूतीकोरन से जहाज़ शाम को पांच बजे छूटता है और दूसरे दिन सबेरे कोलम्बो पहुँचता है।

लंका द्वीप विषुवत रेखा से कुछ ही दूर उत्तर में है। लंका का दक्षिणी सिरा ५.५५ अक्षांश में है जो भारतवर्ष के किसी भाग को नहीं छूता है। ६.५१ अक्षांश लंका के उत्तरी सिरे को छूता है। यही रेखा ट्रावनकोर राज्य और मदुरा जिले में होकर जाती है। इस प्रकार लङ्का की अधिक से अधिक लम्बाई केवल २७० मील है। जो देशान्तर रेखा (८१'५५) इलाहाबाद शहर में होकर गुज़रती है वही देशान्तर रेखा लङ्का के पूर्वी तट को बिना छुये हुये पास से निकल जाती है। मद्रास वाली ८०



१—लङ्का का विस्तार और क्षेत्रफल

देशान्तर रेखा लङ्का के पश्चिमी भाग को काटती है। पश्चिमी सिरा ७९'४१ देशान्तर रेखा से घिरा है। इस प्रकार लङ्का की अधिक से अधिक चौड़ाई लगभग १४० मील है। इस बड़े द्वीप का क्षेत्रफल २५३२२ वर्ग मील है जो हमारे संयुक्त प्रान्त का लगभग ¼ है।

अपनी लंका-यात्रा के समय महत्मा गान्धी ने लङ्का को "भारत का मोती" बतलाया। सचमुच हिन्दुस्तान के लिये लङ्का बड़ा मूल्यवान मोती है। दोनों का जो पुरानी संस्कृति का सम्बन्ध है उसका मूल्य कूता नहीं जा सकता। लङ्का की स्थिति हिन्दुस्तान के लिए बड़े महत्व की है।

स्वाधीन भारत और स्वाधीन लङ्का की मित्रता दोनों के लिये हितकर होगी। लङ्का में विदेशी सत्ता का होना स्वाधीन भारत की छाती पर छुरी की तरह खटकता रहेगा। पूर्ण स्वतन्त्र और मित्र लङ्का भारत के समुद्री पहरेदार का काम देगा। कोलम्बो से अदन और सिंगापुर प्रायः समान दूरी पर हैं। कोलम्बो से डर्बन (दक्षिण-अफ्रीका) और फ्रीमेंटल प्रायः समान दूरी पर है। कोलम्बो से बम्बई ८८३ मील और कलकत्ता केवल १२३१ मील है।



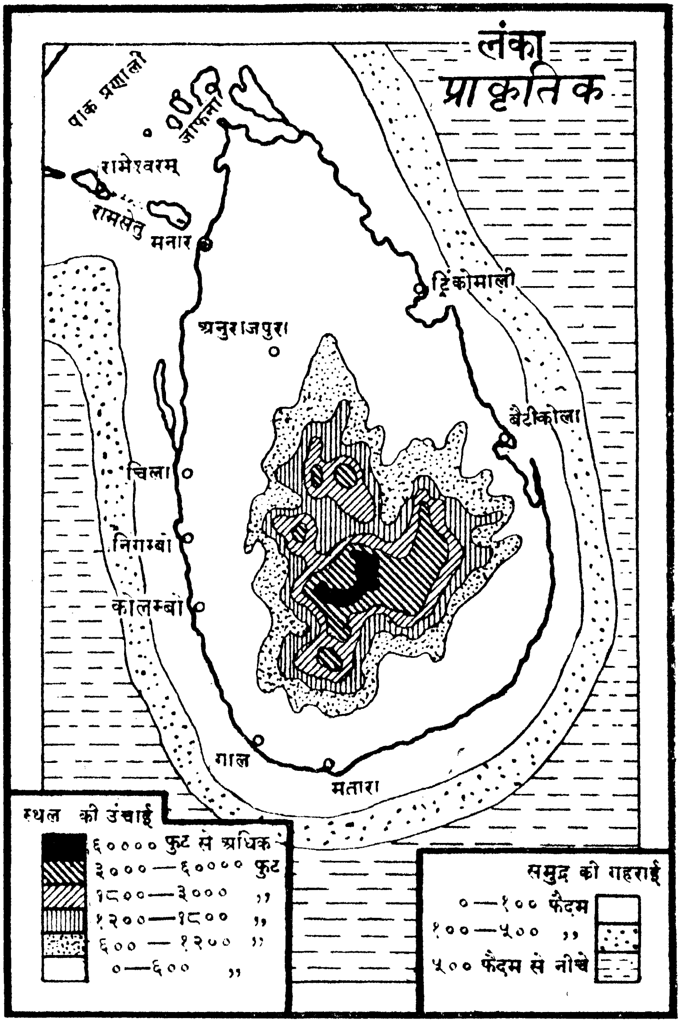
भूरचना

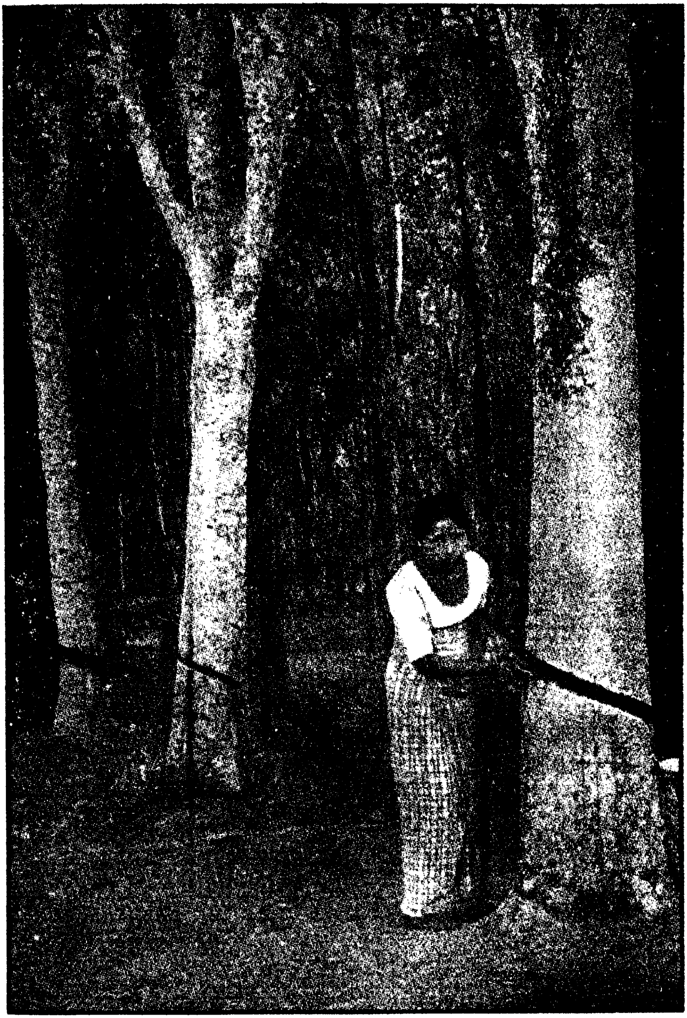
लङ्का का अधिकतर भाग एक दम चपटा है। जहां ज़मीन बिलकुल समतल नहीं है वहां भी उँचाई निचाई में इतना कम अन्तर है कि यह समुद्र की तरह एक लहरदार छोटा मैदान मालूम होता है। लेकिन लङ्का का दक्षिणी भाग पहाड़ी है। सब से ऊँची पिदुरतलगला चोटी की उंचाई ८२९६ फुट है। ऐसा मालूम होता है कि यह पड़ोस के मैदान के बीच में एक दम उठ कर खड़ी हो गई है। लंका के पहाड़ दक्षिण के पठार की तरह पुराने घिसे हुए पहाड़ों के शेष भाग (ठूँठ) हैं। रामपाद, बुद्धपाद या आदम की चोटी ऊंची तो कम (७३५३ फुट) है लेकिन यह लंका में अधिक प्रसिद्ध है। इसी पहाड़ी भाग में लंका की प्रधान नदियों का निकास है। एक तो द्वीप की लम्बाई (२७० मील) और चौड़ाई (१४० मील) ही बहुत कम है। दूसरे पहाड़ दक्षिणी भाग के प्रायः बीच में स्थित हैं। इस लिये लङ्का की नदियों को समुद्र और पहाड़ के बीच में बहुत कम स्थान बहने को मिल पाता है। लंका की सबसे बड़ी

(२०६ मील लम्बी) नदी महाबली गंगा है। यह दक्षिणी पहाड़ी भाग से निकल कर उत्तर-पूर्व की ओर बहती है। इसका अधिकतर भाग जंगलों से घिरा है। ट्रिंकोमाली के पास यह समुद्र में गिरती है। इसमें इतना कम पानी रहता है कि स्नान करने के लिये हाथियों का उलटा लेट जाना पड़ता है। इसे पार करने के लिये अक्सर नाव या पुल की जरूरत नहीं पड़ती है। दूसरी नदी केलानी गंगा है इसकी लम्बाई केवल ६० मील है। कोलम्बो के पास यह समुद्र में गिरती है। वहीं इसमें कुछ दूर तक छोटी छोटी नावें चल सकती हैं। कालू गङ्गा और भी छोटी है। उथली होने के अतिरिक्त लंका की नदियां पहाड़ी भाग में बहुत तेज़ बहती हैं। पहाड़ी भाग में जङ्गलों के कट जाने से वे इतनी मिट्टी बहा लाती हैं कि उनके मुहाने कांप (कीचड़) से घिर जाते हैं और उनमें बड़ी नावें नहीं चल सकती। लंका में पहाड़ और समुद्र के बीच में पानी को बहुत कम स्थान बहने को मिलता है। पहाड़ों की तलहटी में ढाल भी काफी है। इससे लंका में बड़ी झीलों का प्रायः अभाव है। समुद्र-तट के पास नदियों के मुहानों के घिर जाने से वहां अनूप

(लेगून) अवश्य बन गये हैं। इस मिट्टी को इकट्ठा करने में प्रचलित हवाओं और स्थल की ओर आने वाली समुद्री धाराओं से बड़ी सहायता मिलती है।

भूगर्भ विद्या के पंडितों का अनुमान है कि लंका द्वीप पुराने समय में न केवल भारतवर्ष से जुड़ा हुआ था वरन यह द्वीप उस डूबे हुये महाद्वीप का अंग था जो दूसरी ओर अफ्रीका को भारतवर्ष (दक्खिन के पठार) से जोड़ता था। फिर स्थल डूबा। केवल ऊँचे भाग टापुओं के रूप में शेष बचे। पुरानी चट्टानों के अतिरिक्त लंका, दक्खिन-भारत और अफ्रीका के कुछ पौधे और जानवर भी एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। पीछे से लंका में केवल बहुत थोड़े भाग (उत्तर की ओर) में तट कुछ उठकर ऊँचा हो गया है। यहां के कुछ भाग मूंगे के कीड़ों ने बनाये हैं। लगभग १२ मील चौड़ी पेटी लंका के चारों ओर इस प्रकार फैली हुई है कि इसके ऊपर बहुत ही उथला पानी है। इसी डूबे हुये प्लेटफार्म (चबूतरे) के ऊपर नदियों ने अपनी लाई हुई मिट्टी बिछा दी है। इसके आगे फिर समुद्र ६००० फुट गहरा हो जाता है।


लंका
प्राकृतिक
पाक प्रणाली
जाफना
रामेश्वरम्
रामसेतु
मनार
ट्रिंकोमाली
अनुराजपुरा
बैटीकोला
चिला
निगम्बो
कोलम्बो
गाल
मतारा
स्थल की उंचाई
६०००० फुट से अधिक
२००० — ६०००० फुट
१८०० — २००० ,,
१२०० — १८०० ,,
६०० — १२०० ,,
० — ६०० ,,
समुद्र की गहराई
० — १०० फैदम
१०० — ५०० ,,
५०० फैदम से नीचे



२—यहां एक सिंहाली लड़की रबर के पेड़ की छाल को काटकर रबर का रस (दूध) निकाल रही है। वैसे रबर के बगीचों में तामिल मज़दूर काम करते हैं जो मद्रास प्रान्त से यहां आते हैं।



४—एक नौजवान वेद्दा



४—वेद्दा लोग पेड़ों पर लगे हुए शहद के छत्तों से शहद निकालने के लिये लताओं और बेत की सीढ़ी बना रहे हैं



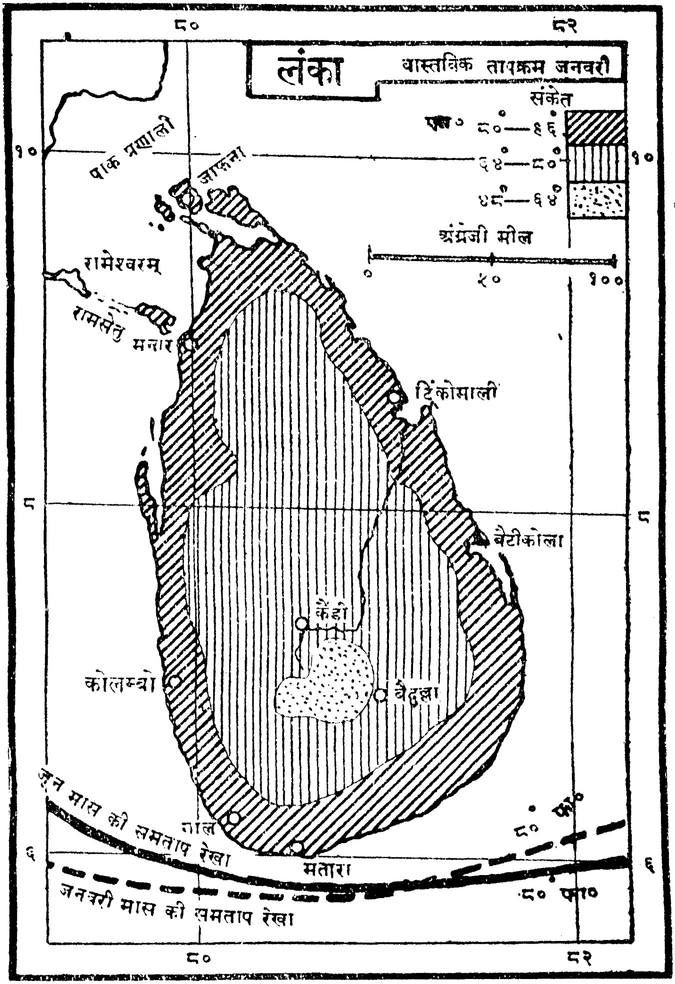
६—निगम्बो नगर के मछली पकड़ने वाले लोग जाल संभाल रहे हैं

पुरानी चट्टानों में सम्बागो (पेन्सिल का काला मसाला) बड़े काम का है। लगभग ४०,००० टन सम्बागो यहां से हर साल बाहर को भेजा जाता है माइका भी कई भागों में मिलता है। लेकिन लंका अपने रत्नों के लिये पुराने समय से प्रसिद्ध रहा है। लंका के बहुमूल्य पत्थरों के भीतर एक तरह का चमकीला तारा सा होता है। यह रत्न अक्सर एडम्सपीक (रामपाद या बुद्धपाद चोटी) के दक्षिण-पश्चिम की कछारी (कांप वाली) ज़मीन में मिलते हैं। इनको निकालने के लिये गड्ढे खोदे जाते हैं। कुरून्दम (Corundum) जाति में कई तरह के रत्न शामिल हैं। इनमें लंका का लाल और नीला पुखराज संसार भर में प्रसिद्ध है।

देश दर्शन

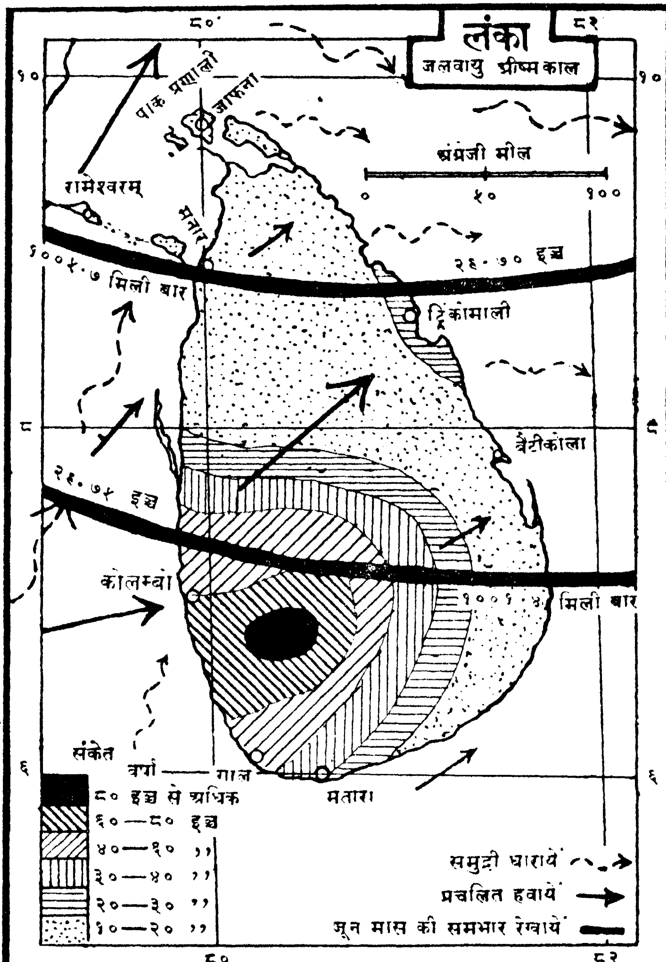
जलवायु

लंका द्वीप विषुवत रेखा के इतने निकट है कि यहां प्रायः सालभर गरमी पड़ती है। लेखक ने दिसम्बर महीने में लंका की यात्रा की थी। उत्तर भारत की ठंड से डर कर जो कम्बल इस यात्रा के लिये साथ में ले गया था उनके ओढ़ने की आवश्यकता लंका के सबसे ऊंचे एक स्थान नुबारा इलिया को छोड़ कर लंका भर में कहीं नहीं पड़ी। जैसी गरमी इलाहाबाद में होली के बाद मार्च या चैत्र महीने में पड़ती है वैसी गरमी लंका में दिसम्बर और जनवरी महीने में पड़ती है। मार्च में इलाहाबाद में केवल दिन में गरमी रहती है। रात कुछ ठंडी हो जाती है। लंका की रातें इतनी ठंडी नहीं होने पाती हैं। लंका में दिन और रात में प्रायः एक सी गरमी रहती है। दिसम्बर की रात को भी लोग नंगे बदन घूमते हैं। दिन में तेज़ धूप से बचने के लिये छाता लगा लेते हैं। जैसे रात और दिन के तापक्रम में कम अन्तर रहता है उसी तरह गरमी और सरदी की ऋतु में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। वहां की सरदी की ऋतु उत्तरी भारत की अपेक्षा कहीं अधिक

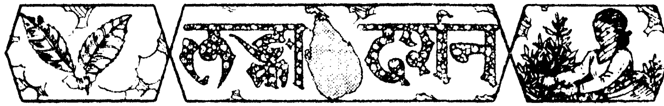


७—जून और जनवरी मास के तापक्रम में कोई विशेष अन्तर नहीं है जैसा कि नीचे की समताप रेखाओं से प्रगट होता है।

गरम होती है। लेकिन वहां की गरमी में इतनी गरमी नहीं पड़ती है जितनी की उत्तरी भारत में पड़ती है।



८—ग्रीष्मकाल की वर्षा

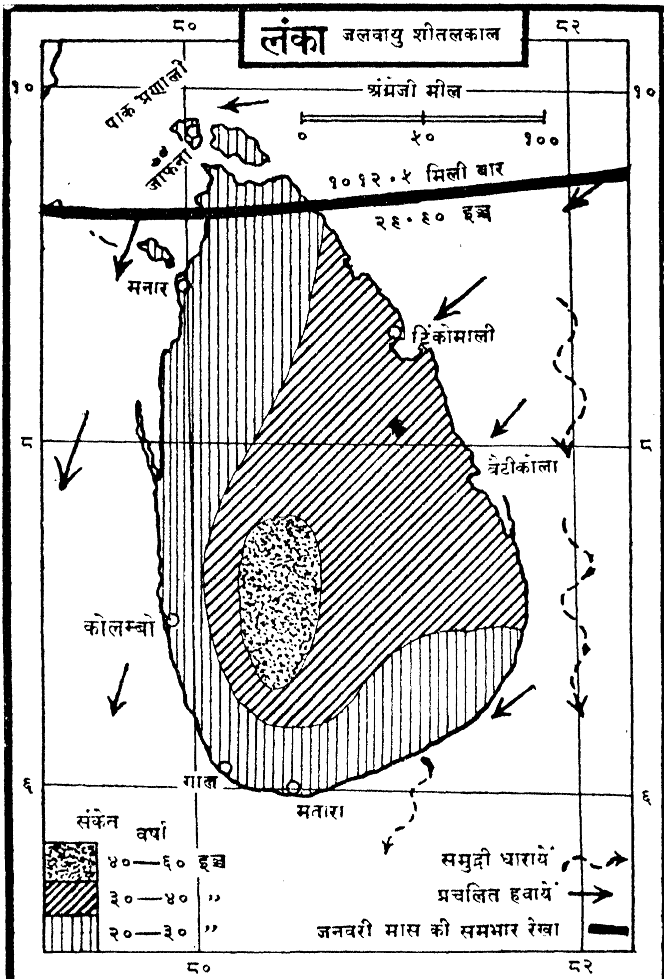


समुद्र की समीपता होने से लङ्का की गरमी बुरी नहीं मालूम पड़ती है। भीतरी भाग अधिक ऊंचे होने के कारण कुछ शीतल रहते हैं। नुवाराइलिया (नुरालिया) सबसे अधिक ऊंचा होने के कारण लङ्का में सबसे अधिक शीतल और स्वास्थ्यकर स्थान है।

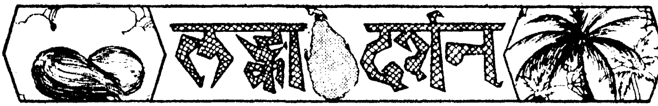
लंकाद्वीप छोटा होने पर भी वर्षा लाने वाली हवाओं की दिशा के अनुसार कई भागों में बँटा हुआ है। सबसे अधिक वर्षा गरमी की ऋतु में होती है। दक्षिणी पश्चिमी भाग में सबसे अधिक वर्षा होती है। किसी किसी भाग में २०० इंच तक वर्षा हो जाती है। पूर्वी भाग में मानसूनी हवायें हिन्दुस्तान से लौटते समय कुछ पानी बरसा देती हैं। बंगाल की खाड़ी के ऊपर से आते समय इनमें काफी ताज़ी भाप मिल जाती है। फिर भी दक्षिण-पश्चिम से आने वाली ग्रीष्मऋतु की मानसूनी हवाओं के मुकाबिले में इनमें बहुत कम पानी रहता है।

उत्तरी भाग (जाफना प्रान्त) कुछ आड़ में है और यहां पहाड़ों का अभाव है। इसी से यह लङ्का का सबसे अधिक सूखा भाग है! दक्षिणी भाग में दोनों मौसमों की हवायें पानी बरसा जाती हैं। इसलिये यह

लंका का सबसे अधिक नम (गीला) भाग है।

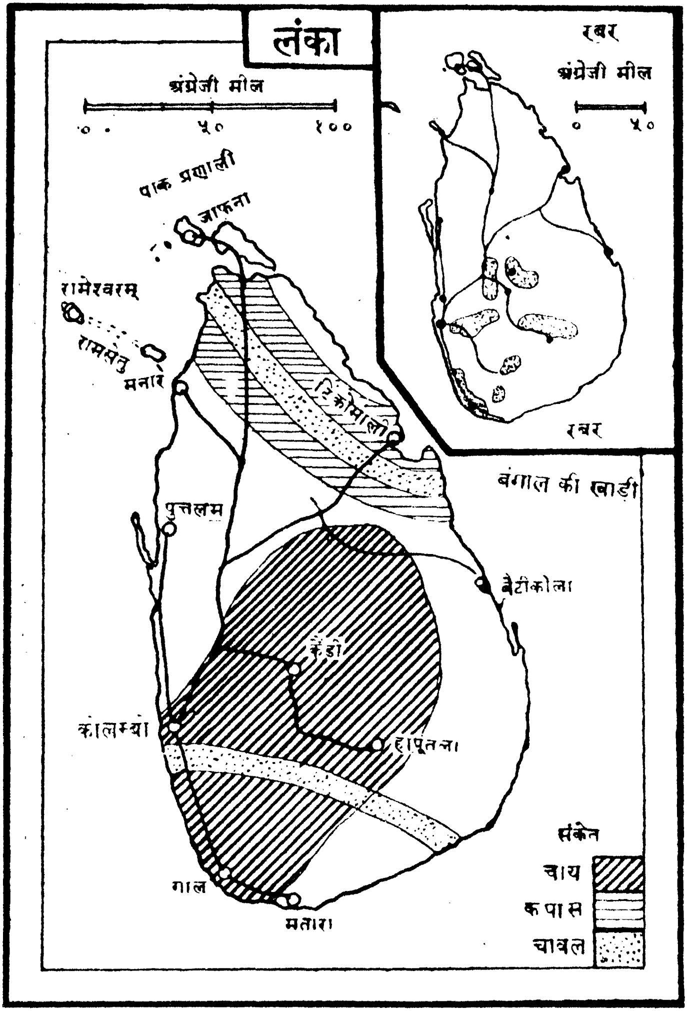


९—शीतकाल की वर्षा



लंका का बन

लंका का बहुत बड़ा भाग बन से ढका है। लंका के उत्तरी मध्यवर्ती और पूर्वी भाग में छोटी छोटी झाड़ियां और उँची घास है। इसका कारण है "चेना" खेती। यहां के लोगों ने खेती करने के लिये पेड़ काट डाले। सूखने पर लकड़ी जला दी गई। इनकी राख ने अच्छी खाद का काम दिया। यहीं वे ज्वार, बाजरा और तरह तरह की तरकारी उगाने लगे। उपज कम होने पर उन्होंने जङ्गल के फिर किसी नये भाग को जलाया और खेती के लिये साफ किया। होते होते सारे जङ्गल के ९० फीसदी भाग में इसी तरह की झाड़ियां शेष रह गईं। अनुराजपुर, सिगिरिया (सिंहगिरि या श्रीगिरी) में इस समय भी बड़े बड़े पेड़ों का घना बन है। यह बन इतना घना है कि जङ्गल में बीस गज़ से अधिक भीतर जाना कठिन है। यहां के लोगों का विश्वास है कि इन घने भागों में भूत रहते हैं। इसी से उन्होंने इन वनों को नहीं जलाया। इन वनों में आबनूस और सैटिन की लकड़ी का ऊपरी भाग बहुत मुलायम होता है भीतरी भाग कड़ा होता है। यही बड़ा कीमती होता है।



लंका
अंग्रेजी मील
० ५० १००
पाक प्रणाली
जाफना
रामेश्वरम्
रामसेतु
मनार
त्रिंकोमाली
बंगाल की खाड़ी
पुत्तलम
बैटीकोला
कैंडी
कोलम्बो
हापूतना
गाल
मतारा
संकेत
चाय
कपास
चावल
रबर
अंग्रेजी मील
० ५०
रबर

१०—उपज



११—नारियल के पेड़ पर चढ़ने और फल तोड़ने में बड़े अभ्यास और साहस की आवश्यकता होती है ।



१२—कालूतरा (साउथ या दक्षिणी) के पास बड़ी सड़क पर बरगद के पेड़ ने एक प्राकृतिक महराब बना दिया है।



१२—लंका के एक गांव का मुखिया



१४—लंका का एक तामिल कंगानी

जङ्गल के सबसे बड़े भागों में यहां के प्राचीन मूल-निवासी वेदा लोग रहते हैं। वेदा लोग दूसरे लोगों से मिलना पसन्द नहीं करते हैं। सिंहाली लोग अधिक खुले भागों में रहते हैं। इन लोगों का जीवन बड़े संकट में रहता है। उनके छोटे छोटे गाँवों से बीसियों मील तक कोई दूसरा गांव या मनुष्य नहीं होता है। उन्हें सदा जङ्गली जानवरों से लड़ना पड़ता है। जङ्गली हाथी उनके खेतों में घुस कर उनकी फसल कुचल डालते हैं और हरे धानों को खा जाते हैं। जंगली हिरण, सुअर और सेही को भगाने के लिये वे चिल्लाते और नगाड़े बजाते रहते हैं। फिर भी जङ्गली जानवर उनकी फसल उजाड़ डालते हैं। अगर वे अपनी भैंसों और छोटी गायों को दिन में सावधानी से न रखावें और रात को लकड़ी के बाड़े के भीतर बन्द न करें तो खूँख्वार चीते उन्हें खा जावें।

कभी कभी जङ्गली जानवर यहां के लोगों को भी मार डालते हैं। साधारण हाथी आदमी पर चोट नहीं करते हैं। लेकिन दुष्ट हाथी मनुष्य को जान से मार डालता है। जङ्गल के लोग भालू से बहुत डरते हैं। भालू अपने तेज़ पंजों से उनके चेहरों को फाड़ डालता है और

उन्हें बुरी तरह से काटता है। जंगली भैंसे और जंगली सुअर आदमी पर बहुत हमला करते है। जंगल के कई भागों में बन्दरों का राज्य है। बन्दर झुण्ड में निकलते हैं और फूली हुई फसलों को खा जाते हैं। लंका का लोरी बन्दर केवल रात में निकलता है। पहाड़ी भागों के सांप बड़े भयानक होते हैं। कोई कोई साँप सात गज़ लम्बे होते हैं। बड़े अजगर हिरणों को मार डालते हैं और छोटे सुअरों को समूचा निगल जाते हैं। यहां के चींटे खाने वाले जानवर बड़े विलक्षण होते हैं। खतरे के समय मुड़कर वे गोल हो जाते हैं। बड़े बड़े मकड़े इतना मज़बूत जाला पूरते हैं कि वह एक छोटी टोपी का बोझ सह सकता है। नदियों, तालाबों और अनूपों (समुद्र के भीतरी भागों) में बड़े बड़े (७ गज़ लम्बे) मगर रहते हैं।

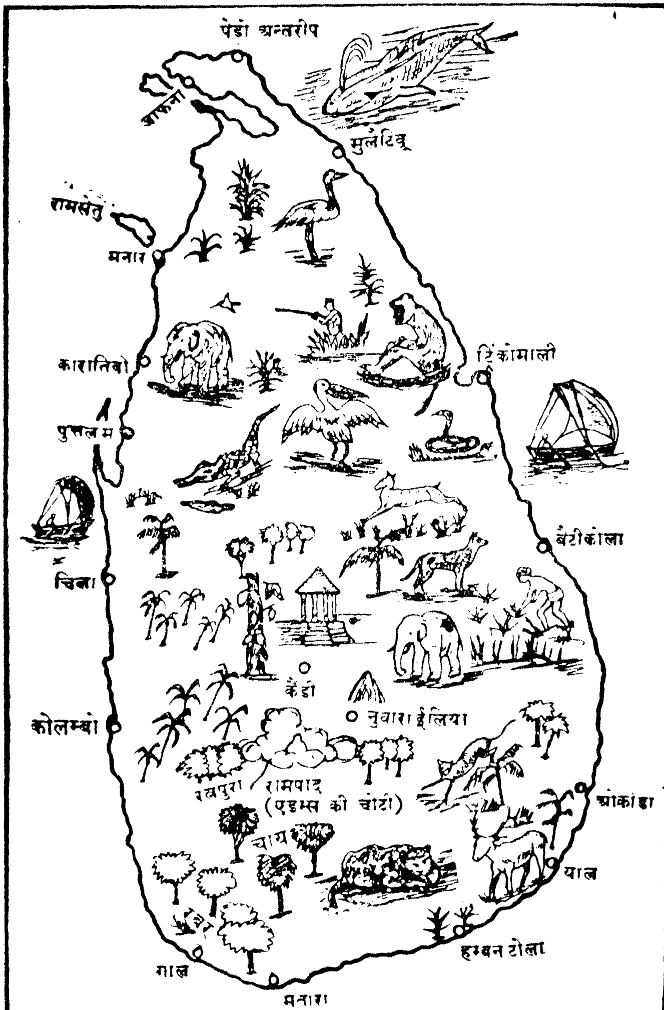
यहाँ के लोगों का विश्वास है कि मरने का समय आने पर जंगली हाथी किसी अकेली घाटी में जाकर लेट जाता है और वहीं मर जाता है। लंका का उत्तरी भाग अत्यन्त खुश्क और निर्जन है। इसको यहां के लोग वन्नी कहते हैं। भारत से आने वाले तामिल लोग इसी को साफ कर तरह तरह की फसलें उगाने लगे हैं।



लंका के हाथी

लंका में जंगली हाथी बहुत हैं। उनको पकड़ कर पालतू बनाने का काम बहुत पुराने समय से चला आता है। जब डच लोगों का लंका में राज्य था तो इतने अधिक हाथी पकड़े जाते थे कि डच सरकार को सब से अधिक आमदनी हाथियों से होती थी। द्वीप के दक्षिणी भाग में पहले हाथियों की भरमार थी। किसी किसी दिन २०० हाथी पकड़े जाते थे। कैंडी के सरदार लोग इस समय भी हाथी पकड़ने में बड़े निपुण हैं। हाथियों को पकड़ने के लिये पेड़ों में मज़बूत तनह के बड़े बड़े क्राल या बाड़े बनाये जाते हैं। फिर सैकड़ों आदमी भाला लेकर बड़े ज़ोर से चिल्लाते हैं और ढोल से शोर मचाते हैं। कभी कभी इन लोगों को हाथी खदेड़ने में कई हफ्ते लग जाते हैं।

क्राल (बाड़े) के फाटक के पास बड़े बड़े मचान बनाये जाते हैं। इन्हीं पर बड़े बड़े निमन्त्रित स्त्री-पुरुष बैठते हैं और हाथियों के झुंड को बढ़ते हुए देखते हैं। जब हाथियों का झुंड उछलता कूदता जंगल से निकल कर फाटक में घुसता


पेड्रो अन्तरीप
मुलैटिवू
रामसेतु
मनार
त्रिंकोमाली
कारातिवो
पुत्तलम
चिला
बैटीकोला
कोलम्बो
कैंडी
नुवारा इलिया
रामपाद
(एडम्स की चोटी)
चाय
याल
हम्बनटोला
गाल
मतारा

१२—चित्रमय लंका

है तब लोग बड़ी खुशी मनाते हैं। वे बहुत चिल्लाते हैं और तरह तरह के बाजों को ज़ोर से बजाते हैं। जब हाथी बाड़े में बन्द हो जाते हैं तब अनुभवी महावत पालतू हाथियों पर सवार होकर बाड़े में घुसते



१६—हाथियों को नहलाया जा रहा है।

हैं। वे नौजवान और अच्छे हाथियों को एक एक करके बांध कर अलग कर लेते हैं। बचे हुए बुड्ढे और कमज़ोर जंगली हाथी छोड़ दिये जाते हैं। कैद में फंसे हुये जंगली हाथी इतने डरपोक हो जाते हैं कि वे अपने

पालने वालों को कुछ भी तकलीफ नहीं देते हैं। कभी नई उम्र की हथिनी अपने नौजवान बच्चे को छुड़ाने के लिये बाड़े के खम्भों पर चोट करती हैं। उसको और दूसरे दुष्ट हाथियों को शिकारी लोग गोली से मार डालते हैं। बाड़े में फंसे हुए जंगली हाथी इतने घबरा जाते हैं कि वे पालतू हाथियों के महावतों से कुछ भी नही बोलते है। यदि वे चाहें तो आसानी से उन्हें पालतू हाथियों की पीठ से गिरा कर पैरों तले कुचल डालें।

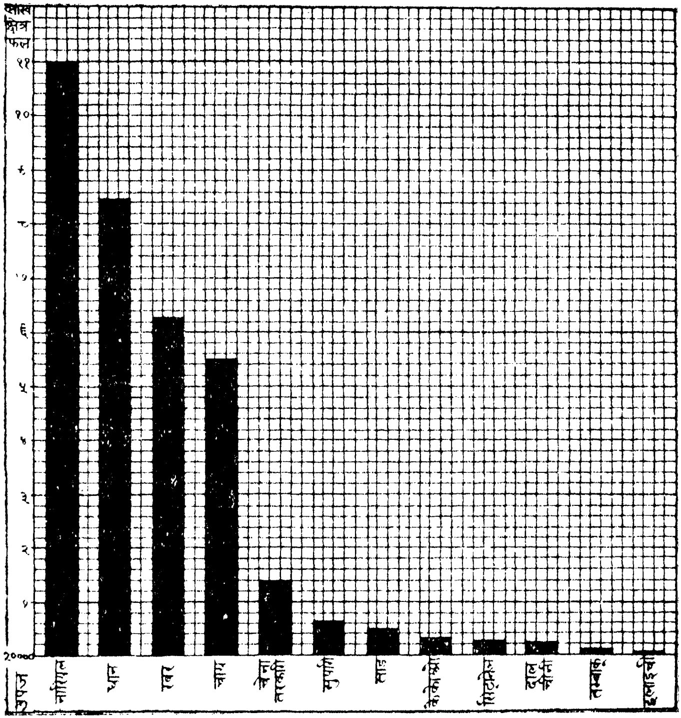
पकड़े हुए हाथियों को सिखाना आसान है। उनके अगले और पिछले पैर मज़बूत रस्सों और पेड़ों से लड़ते झगड़ते बेहद थक जाते हैं। इसके बाद उन्हें भोजन और पानी दिया जाता है। कुछ देर ठहरने के बाद वे भोजन करते हैं और पानी पीते हैं। रोज़ रोज़ उन्हें इसी प्रकार खिलाया पिलाया जाता है। इस तरह उन्हें अपने पालने वाले मनुष्यों को देखने का अभ्यास हो जाता है। कुछ हफ़्तों में वे ऐसे पालतू हो जाते हैं कि रस्सी खोल कर उन्हे पानी पिलाया जाता है। रस्सी खोलने पर भी वे पानी पीकर लौट आते हैं।



चाय के बगीचे

लंका का भूमिसम्बन्धी क़ानून दूसरे देशों से भिन्न था। लंका की ज़मीन पर प्रजा का अधिकार था। वह राजा की सम्पत्ति नहीं समझी जाती थी। आगे चलकर जब यहाँ अंग्रेज़ों का अधिकार हुआ तो उन्हें उस क़ानून से बड़ी अड़चन मालूम हुई। इस लिये उन्हों ने इस क़ानून को शिथिल करने के लिये वेस्टलैंड आर्डि-नेन्स नाम का एक नया क़ानून घोषित किया। इस के अनुसार जिस ज़मीन पर खेती नहीं होती थी वह सरकारी ज़मीन समझी जाने लगी। इन दिनों लंका के बहुत थोड़े भाग में खेती होती थी। बहुत बड़े भाग जंगलों से घिरे हुए थे। इन पर सरकारी अधिकार हो गया। ब्रिटिश सरकार ने इन जंगलों की ज़मीन को नाम-मात्र का मूल्य लेकर गोरे ज़मींदारों को दे दिया। इस प्रकार गोरे मालिकों ने निचले भागों में रबर और ऊँचे भागों में चाय के बगीचे लगाये। अब से लगभग ९० वर्ष पहले जिन पहाड़ियों पर घना जंगल था उनके ऊपर आजकल चाय के बगीचे हैं। पहले यहाँ कहवा के पौधे लगाये गये थे। लेकिन कहवा की पत्तियों में ऐसी

बीमारी फैली कि अब वहां शायद ही कहवे के पोधे



१७—लंका की प्रधान उपज

मिलें। चाय के पौधे यहां की ज़मीन और जलवायु में खूब फैले। उँचाई पर गरमी कुछ कम हो जाती है। इस

लिये लङ्का के ये ऊँचे भाग गोरे लोगों को बहुत अनुकूल सिद्ध हुये। इसी से लङ्का के चाय के बगीचे प्रायः गोरों के हाथ में है। यहां तक पहुँचने के लिये सुन्दर सड़कें



१८—चाय के बगीचे का एक दृश्य। पत्तियाँ तोड़ने का काम स्त्रियाँ करती हैं। वे अपनी पीठ पर टोकरी बांधे रहती हैं। उनके दोनों हाथ खुले रहते हैं। बडी तेज़ी से कोमल पत्तियों को तोड़ कर वे टोकरी में डालती हैं। शाम को उनकी तोड़ी हुई पत्तियां तौली जाती हैं। तौल के अनुसार ही उनको मज़दूरी मिलती है।

और रेले हैं। जलशक्ति से चाय के कारखानों को सस्ती बिजली मिल जाती है।

सिंहाली लोग मज़दूरी करना पसन्द नहीं करते हैं। इसलिये चाय के इन बगीचों में हिन्दुस्तान के तामिल कुली मज़दूरी करने आते हैं।

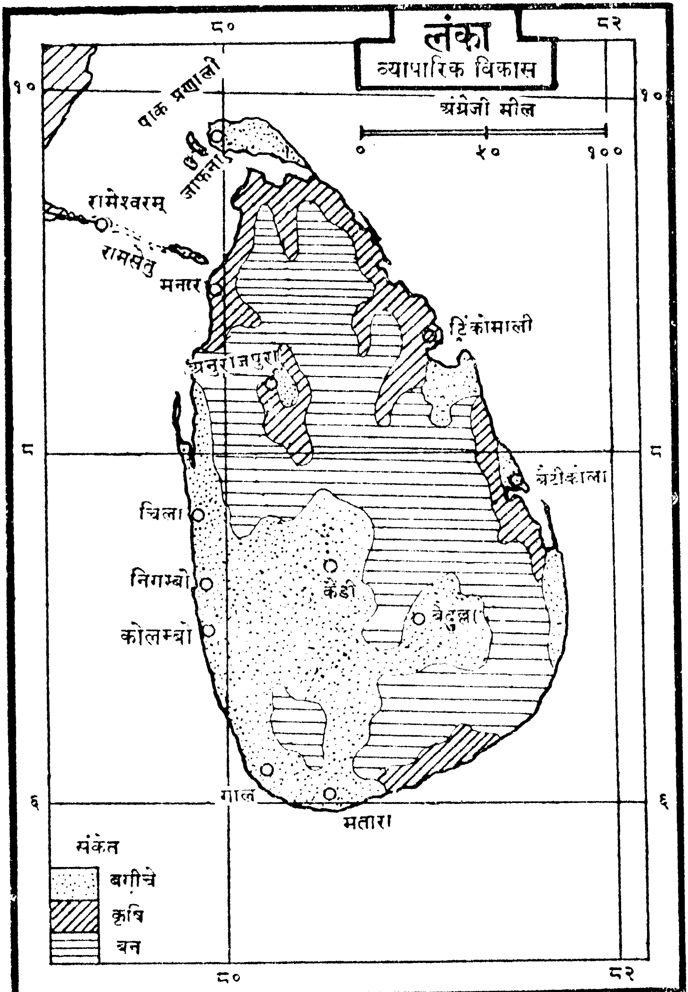
सड़क निकालने और अधिक मेहनत का काम कुली लोग करते हैं। लेकिन चाय की मुलायम हरी पत्तियां तोड़ने का काम औरतें और बच्चे करते हैं।

यदि चाय के पौधे को बढ़ने दिया जावे तो यह बहुत ऊँचा हो जाता है। लेकिन पौधे को अक्सर काट छांट देते हैं। इससे बच्चे भी बड़ी आसानी से छोटी झाड़ियों के पत्ते तोड़ लेते हैं। काम करते समय औरतें अपने छोटे बच्चों को कपड़े की झोली में लिटाकर पेड़ पर बांध देती हैं। पत्ती तोड़ने के बाद फिर इन्हें सुखाने और मोड़ने आदि का सब काम मशीन से होता है। जो चाय ४००० फुट से अधिक ऊँची ज़मीन पर उगती है वह अधिक निचले भाग में उगने वाली चाय से अधिक अच्छी होती है।

रबर

रबर के पेड़ को लगातार अधिक नमी और गरमी की आवश्यकता है। लंका के बहुत बड़े भाग की ज़मीन रबर उगाने के लिये अनुकूल पड़ती है। यहां रबर के बगीचे सब कहीं २००० फुट से कम उँचाई पर लगाये गये हैं। इस समय लंका में लगभग साढ़े छः लाख एकड़ ज़मीन रबर के बगीचों से घिरी हुई है। लेकिन अब से साठ-सत्तर वर्ष पहले लंका में रबर का एक भी पेड़ न था। १८७६ ई० में भारतीय सरकार को दक्षिणी अमरीका में पारा इण्डिया रबर के कुछ बीज और पौधे मिल गये।

हिन्दुस्तान की जलवायु इनके लिये ठीक न थी। इस लिये भारत सरकार ने उन्हें लंका में भेज दिया। कोलम्बो से १७ मील दक्षिण एक गरम और तर भाग (हेनरत गोदा) में इनकी जांच हुई। यहां की जलवायु रबर के लिये एकदम ठीक हुई। पेड़ों का लगना शुरू हो गया। १८९८ में ७५० एकड़ ज़मीन में रबर के पौधे लगे थे। आजकल लगभग साढ़े छः लाख एकड़ ज़मीन


लंका
व्यापारिक विकास
अंग्रेजी मील
० ५० १००
पाक प्रणाली
जाफना
रामेश्वरम्
रामसेतु
मनार
ट्रिंकोमाली
अनुराजपुरा
बट्टीकाला
चिला
निगम्बो
कैंडी
बेदुल्ला
कोलम्बो
गाल
मतारा
संकेत
बगीचे
कृषि
वन
८०
८२
१०
८
६

१६—व्यापारिक विकास



रबर के पेड़ों से घिरी हुई है। रबर के बगीचे प्रायः सभी योरुपीय लोगों के हाथ में हैं। इनमें कार्य करने के लिये दक्षिण भारत से तामिल मज़दूर बुलाये जाते हैं। पेड़ लगाने के कुछ ही वर्ष बाद रबर का रस या दूध देने लगते हैं। दूध निकालने के लिये जड़ के पास तनह के आधे घेरे की छाल कुछ इंच चौड़ी काट दी जाती है। यहीं से रस टपकने लगता है। यह रस प्याले में गिरता है। दूसरे दिन इन प्यालों का रस या दूध उंडेल कर बाल्टी में भर लेते हैं। फिर इस रस को धीमी आंच से सुखा लेते हैं। इसी रबर से कारखानों में टायर, ट्यूब, जूते आदि तरह तरह की चीज़ें बनती हैं।





२१—नारियल का पेड़

नारियल

लंका में एक कहावत है कि नारियल का पेड़ समुद्र के पड़ोस में ही उगता है। सचमुच लंका का समुद्र-तट प्रायः सब कहीं नारियल और ताड़ के पेड़ों से ढका है। नारियल के पेड़ को उगाने के लिये साल भर में ५० इंच से ६० इंच तक की वर्षा की आवश्यकता होती है। इसलिये नारियल का पेड़ अधिकतर पश्चिमी तट पर होता है। इसको समतल भूमि अधिक पसन्द हैं। वैसे यह अधिक से अधिक १५०० फुट ऊंची ज़मीन पर

उग सकता है। नारियल का पेड़ काफी धीरे धीरे उगता है। अंकुर फूटने में ही इसको छः महीने लग जाते हैं। कुछ नारियल के पेड़ छः वर्ष में फल देने लगते हैं। अधिकतर नारियल दस वर्ष में फल देते हैं। साल भर गरमी और वर्षा होने से नारियल का पेड़ साल में छः बार फल देता है। कुछ नारियल के पेड़ हरे ही गिर पड़ते हैं। इनके भीतर गूदा (खोपरा) तयार नहीं हो पाता है। इनका रस पीने के काम आता है। फिर भी औसत से सालभर में एक पेड़ से ३० पके फल मिलते हैं। एक एकड़ के बगीचे में लगभग १०० पेड़ होते हैं। लंका द्वीप में लगभग ६ लाख एकड़ ज़मीन नारियल के बगीचों से घिरी हुई है। इससे तुम लंका में नारियल की उपज का अनुमान कर सकते हो।

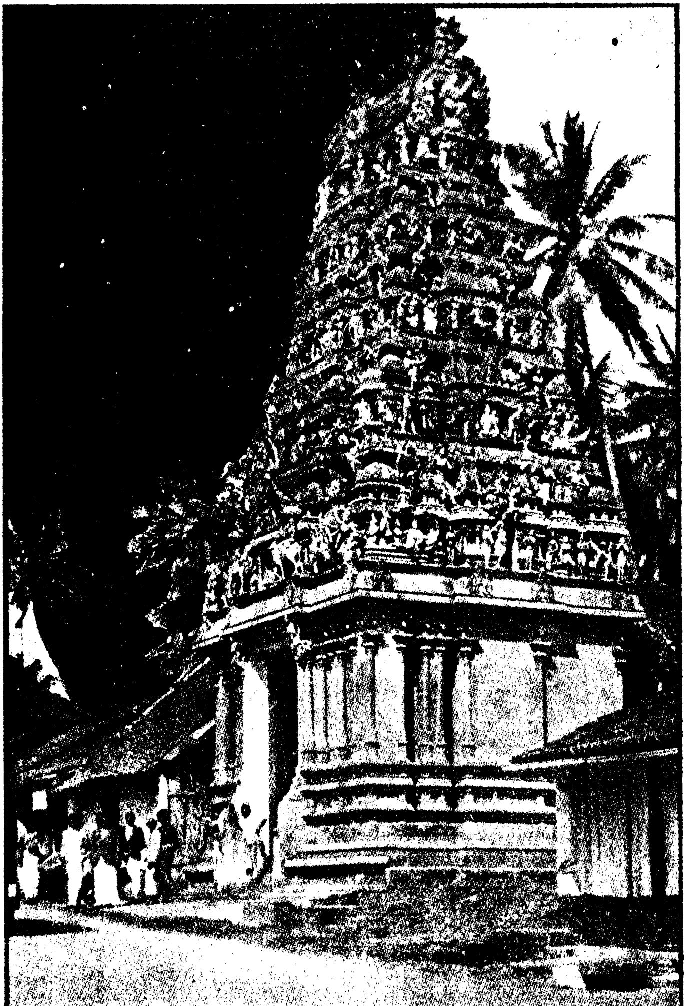
लंका-निवासियों के लिये नारियल का पेड़ बड़ा उपयोगी होता है। वे इसकी पत्तियों से चटाई और टोकरी बनाते हैं। इसके पत्तों से ही अक्सर उनके हलके झोपड़ों की दीवारें और छतें (छप्पर) बनाई जाती हैं। लकड़ी (तनह) गाड़ी बनाने और खम्भों के काम आती हैं। फल के ऊपर का मज़बूत रेशा पानी में जल्द नहीं सड़ता है।

इसे कूटकर वहां के लोग रस्सी बनाते हैं। रेशे के नीचे नारियल का कड़ा छिलका होता है। पतला होने पर भी यह बहुत मज़बूत होता है। लंका निवासी इससे प्याले, चम्मच और दूसरी चीज़ें बनाते हैं। कड़े छिलके के नीचे स्वादिष्ट गरी (खोपरा) होती है। इसे वे कच्चा भी खाते हैं और उससे वे तरह तरह की मिठाइयां बनाते हैं। लंका के इस तट वाले भाग में दूध देने वाले गाय, भैंस आदि जानवर कम हैं। यह फल दूध और घी दोनों ही का काम देता है। इसमें लगभग ६० फीसदी तेल होता है। इसी तेल को निकाल कर वे खाने, जलाने, और साबुन बनाने के काम में लाते हैं। जिस नमकीन रेतीली ज़मीन में दूसरे पेड़ों का बढ़ना कठिन है उसी भाग में प्रकृति ने नारियल के पेड़ों को पैदा करके लंका-वासियों पर बड़ा उपकार किया है। लम्बे लम्बे पेड़ हवा में झूमते हुए बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। एक पेड़ के नीचे बहुत घनी छाया नहीं होती है। लेकिन बहुत से पेड़ों के लगे होने से बगीचे में काफी छाया हो जाती है।

आम की तरह नारियल का पेड़ लगाने पर ही लगता है। इसको खाद और पानी देना पड़ता है। लेकिन



२२—लंका के भिक्षु। पीले वस्त्रधारी भिक्षु लोग इस समय भी संसार के सुखों से मुख मोड़कर सारे लंका द्वीप में बुद्ध भगवान का सन्देश पहुँचाते रहते हैं।



३१—गम्पोला का हिन्दू मन्दिर। इसके गोपुरम (ऊपरी) भाग में देवताओं की सुन्दर मूर्तियां बनी हुई हैं।



२४—रत्न महाप्रसाद या हाथियों के अस्तबल के द्वार पर बना हुआ पत्थर का द्वारपाल (दरबान)



बबूल की तरह ताड़ का पेड़ अक्सर जंगली होता है। इससे ताड़ी निकाली जाती है। जहां किसी बगीचे में ताड़ी बेचने का झोपड़ा होता है वहां दूर दूर से लोग ताड़ी पीने आते हैं। कुछ लोग ताड़ी पीकर आपस में लड़ने झगड़ने भी लगते हैं। इससे अक्सर मुकद्दमेबाजी तक हो जाती है। लेकिन पढ़े लिखे लोग बहुत कम ताड़ी पीते हैं।

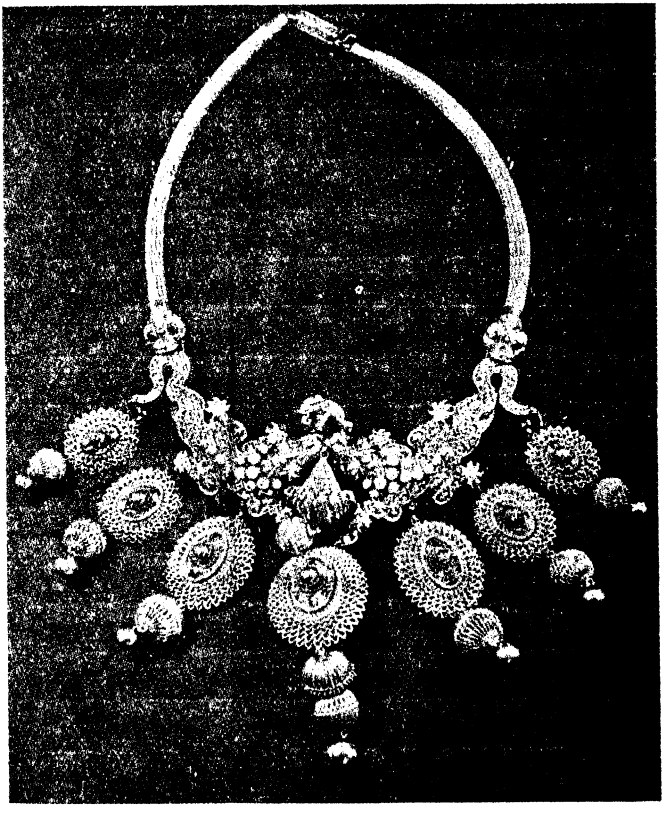


देश दर्शन

लंका के मोती

लंका में मोती निकालने का काम बहुत पुराने समय से होता चला आया है। पश्चिमी तट से लगभग १२ मील की दूरी पर उथले समुद्र में मोतियों का प्रधान केन्द्र है। यहां समुद्र की गहराई लगभग १६ गज़ से २० गज़ तक है। यह क्षेत्र पुत्तलम से पाक प्रणाली तक चला गया है। निगम्बो के पास इसका प्रधान केन्द्र है। समुद्र का यह भाग बहुत सुरक्षित है। यहाँ समुद्री धाराओं का प्रायः अभाव है। जिन जल-कीटाणुओं को जिन्दा सीपें खाती हैं वे यहां अपार संख्या में पाये जाते हैं। मोती मिलने का स्थान सरकारी सम्पत्ति है। १६२५ में डेढ़ करोड़ सीपें निकाली गई थीं। इनका मूल्य सवा पांच लाख रुपया था। पुराने समय से अब तक मोतियों से लंका के राजाओं को बड़ी आमदनी हुई। पुर्तगाली, डच और ब्रिटिश सरकारों को लंका के मोतियों से बड़ी आमदनी हुई। मोती निकालने का काम हर साल नहीं हो सकता। कभी कभी मोती की सीपें इतनी अधिक निकाल ली जाती हैं कि फिर वर्षों तक मोतियों की सीपों का निकालना स्थगित हो जाता

है। उनकी संख्या इतनी कम रहती है कि निकालने वालों को कोई लाभ नहीं होता है।



२७—रत्न जटित एक सिंहाली आभूषण

देश दर्शन

जिन सीपों में मोती मिलता है वे समुद्र की कड़ी तली में १६ गज से ५० गज़ तक गहरे पानी में मिलती हैं। कभी जिन्दा सीप के पेट में बालू का कण या दूसरा पदार्थ पहुँच जाता है तब यह उसे बेचैन कर देता है। यह उस कण को निकालने में असमर्थ होती है। लेकिन यह उसके ऊपर अपनी लार की तह लपेटती रहती है। अन्त में इनकी सफेद चमकीली तहें कड़ी होकर मोती बन जाती हैं। कुछ मोती बहुत छोटे होते हैं। कुछ बहुमूल्य मोती सुपारी के बराबर होते हैं।

मोती की सीपों को निकालने का काम फाल्गुन (फर्वरी) से वैशाख तक चलता है। लगभग डेढ़ सौ नावें रात को तट से चलकर अपने नियत स्थानों पर आती हैं। सवेरा होते ही गोता खोर भारी पत्थर बांध कर नाव के नीचे डुबकी लगाते हैं। एक डेढ़ मिनट में थैलों में सीप भरकर रस्सी के सहारे वे शीघ्र ही ऊपर आते हैं। सीपों का थैला नाव पर खाली करके वे फिर डुबकी लगाते हैं। यह काम दोपहर तक जारी रहता है। इसके बाद स्थल की ओर हवा चलती है। तभी सीपों की भरी नावों को गोता खोर किनारे ले आते हैं। समुद्र के इस भाग में

बड़ी बड़ी शार्क मछली रहती हैं। इनके दांत बड़े तेज़ होते हैं। वे साधारण घड़ियाल से बड़ी होती हैं और कुछ ही मिनट में वे आदमी के टुकड़े टुकड़े करके खा जाती हैं। लेकिन हर नाव में आठ दस आदमी रहते हैं। डेढ़ सौ नावों के हज़ार डेढ़ हज़ार मनुष्यों का इतना शोर होता है कि वे यहां से डर कर भाग जाती हैं। लेकिन यहां के गोताखोरों का विश्वास है कि शार्क उन ताबीज़ों की बदौलत उनसे नहीं बोलती हैं जिनको वे गोता लगाने से पहले ही कुछ सेन्ट (पैसे) देकर अपने मुल्लाओं से मोल लेकर बांध लेते हैं।

किनारे पर आने के बाद नावों की सीपें लकड़ी के बाड़ों (कोट्टू) में पहुँचाई जाती हैं। यहां सीपों की गिनती होती है। गोताखोर अपना हिस्सा ले लेते हैं। सरकारी हिस्सा नीलाम कर दिया जाता है। नीलाम में बोली बोलने के लिये दूर दूर से सौदागर लोग आते हैं। किसी किसी साल काफी मोती मिल जाते हैं और वह साल सफल माना जाता है। किसी वर्ष सीप के छिलके से ही सब को सन्तोष करना पड़ता है। इसी ओर बहुत सी कौड़ी और शंख भी निकाले जाते हैं। यहीं

एक प्रकार की विचित्र मछली होती है जिसे तामिल लोग समुद्री सुअर कहते हैं। इसका मांस मूर (मुसलमानों) को भी अच्छा लगता है। इसलिये उन्होंने इसका नाम बदल कर आवरिया रक्खा है। यहां कभी कभी इतनी अधिक मछलियां बिकती हैं कि वे सुखाकर लंका के भीतरी भागों को भेजी जाती हैं। लंका के भीतरी भाग की दुकानों में चावल के साथ तरह तरह की सूखी मछलियों से भरी हुई चटाई की टोकरियां बिक्री के लिये रक्खी रहती हैं।

मोती निकालने के लिये डुबकी लगाने का काम अरबी और तामिल लोग करते हैं। डुबकी लगाने वाला २ मिनट तक पानी के नीचे ठहरा रहता है। मरीछीकेडी समुद्र तट पर एक छोटा गांव है। यहां बहुत थोड़े झोपड़े हैं और कुछ ही लोग नज़र आते हैं। लेकिन जब मोती निकालने का समय आता है तब यहां ३० या ४० हज़ार मनुष्यों की भीड़ बाहर से आ जाती है। खूब शोर होता है। जब सीपें सड़ती हैं तब यहां ऐसी दुर्गन्ध उठती है कि यहां ठहरना कठिन हो जाता है। लेकिन मोती मिल जाने के लोभ से लोग उनको उलटने और तोड़ने का काम करते ही रहते हैं।



लंका के रत्न

कोलम्बो से कुछ ही घंटे रेलगाड़ी पर सफर करने के बाद रत्नपुरा नगर आजाता है। यह नगर अपने रत्नों के लिये लंका भर में प्रसिद्ध है। रत्नपुरा नदी के बहुत ऊँचे किनारे पर बसा है। नदीतल तक आने के लिये काफी नीचा उतरना पड़ता है। अक्सर नदी में बहुत उथला पानी रहता है। सूखी और मोटी बालू को इकट्ठी करके बहुत से लोग यह रत्न खोजते रहते हैं। कुछ नदी से दूर ऊंची कछारी भूमि को खोदते हैं। वे भीतर की मिट्टी को खोदकर ऊपर लाते हैं। इस मिट्टी में भी कभी कभी रत्नमिल जाते हैं।

लंका के रत्न कई प्रकार के होते हैं। इन बहुमूल्य मणियों और पत्थरों के भीतर तारे की सी चमक रहती है। नीले रंग का पत्थर बहुत कीमती समझा जाता है। निकालने के समय इन बहुमूल्य पत्थरों में कोई बड़ी विशेषता साधारण आदमी को नज़र नहीं आती है। लेकिन रत्नों को तराशने वाले उन्हें ताड़ जाते हैं। रत्नपुरा में थोड़ी थोड़ी दूर पर तराशने वालों की दुकानें

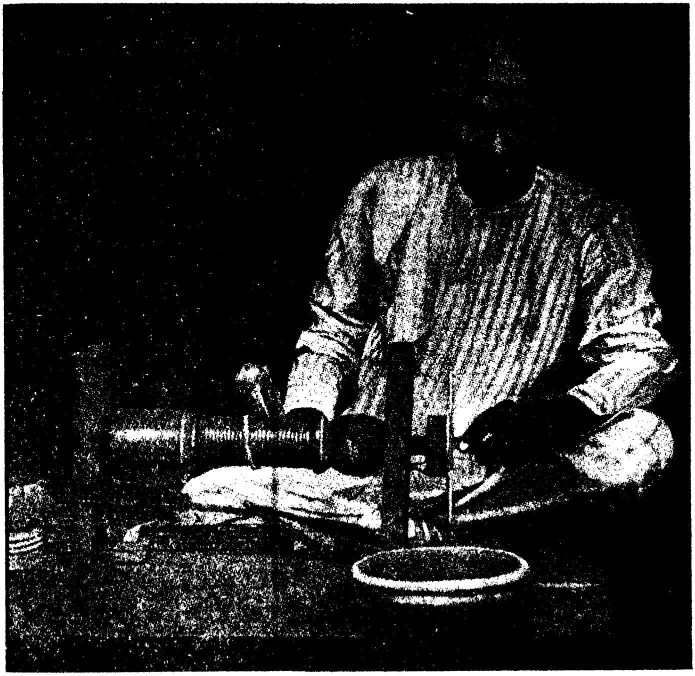
हैं। वे इन टुकड़ों को छील और काटकर ऐसा चमका



२८—लंका के प्रसिद्ध स्थान सिगिरिया (श्रीगिरि) को चित्रकारी का एक नमूना।

देते हैं कि साधारण आदमी भी उन्हें लेने के लिये तयार

हो जाता है। मोटर के अड्डे बाज़ार और स्टेशन पर



२६—रत्नपुरा का एक कारीगर रत्न को काटकर चमकीला बना रहा है। यहां के बाजार में जगह जगह पर इसी तरह के कारीगर अपनी छोटी दुकानों में बैठकर काम करते हैं।

रत्न बेचने वाले मिलते हैं। इनमें कुछ ठग भी होते हैं

और असली रत्न के बदले नकली रत्न को बेच देते हैं। रत्न मोल लेने में अनुभवी जौहरी की सलाह बड़ी आवश्यक है।

रत्न निकालने का काम सिंहाली लोगों के हाथ में है। लेकिन कारीगर अधिकतर मूर हैं। हर साल लगभग २० लाख रुपये के रत्न निकाले जाते हैं।



३०

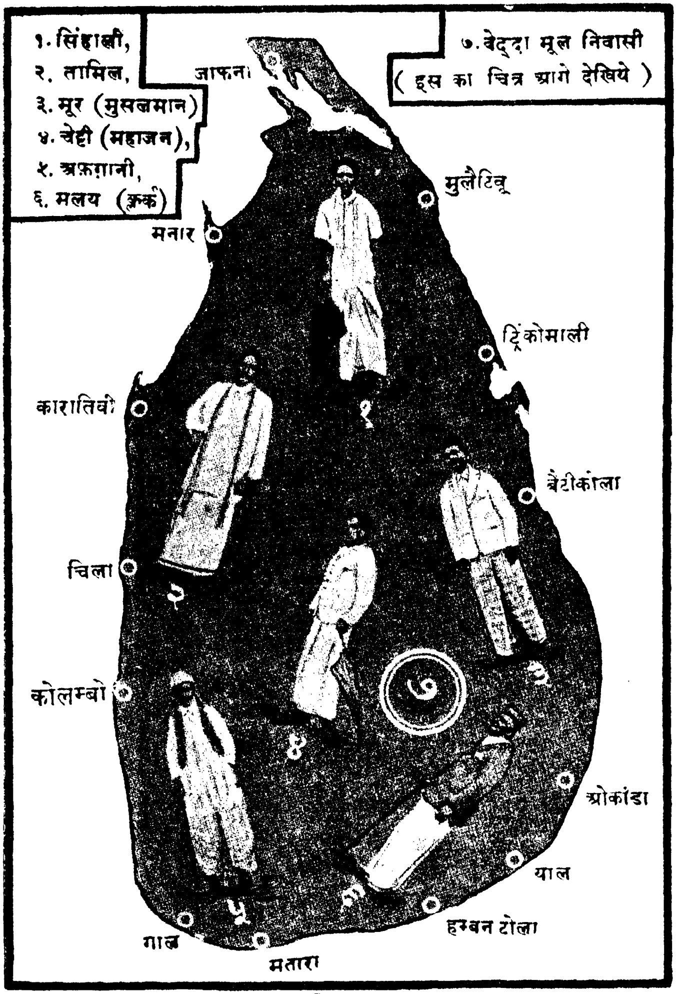
निवासी

लङ्का द्वीप काफी घना बसा हुआ है। औसत से एक वर्ग मील में जितने मनुष्य हिन्दुस्तान में रहते हैं लङ्का में उनसे कुछ अधिक ही रहते हैं। सारे द्वीप में लगभग ५० लाख मनुष्य रहते हैं। इनमें सिंहाली लोगों

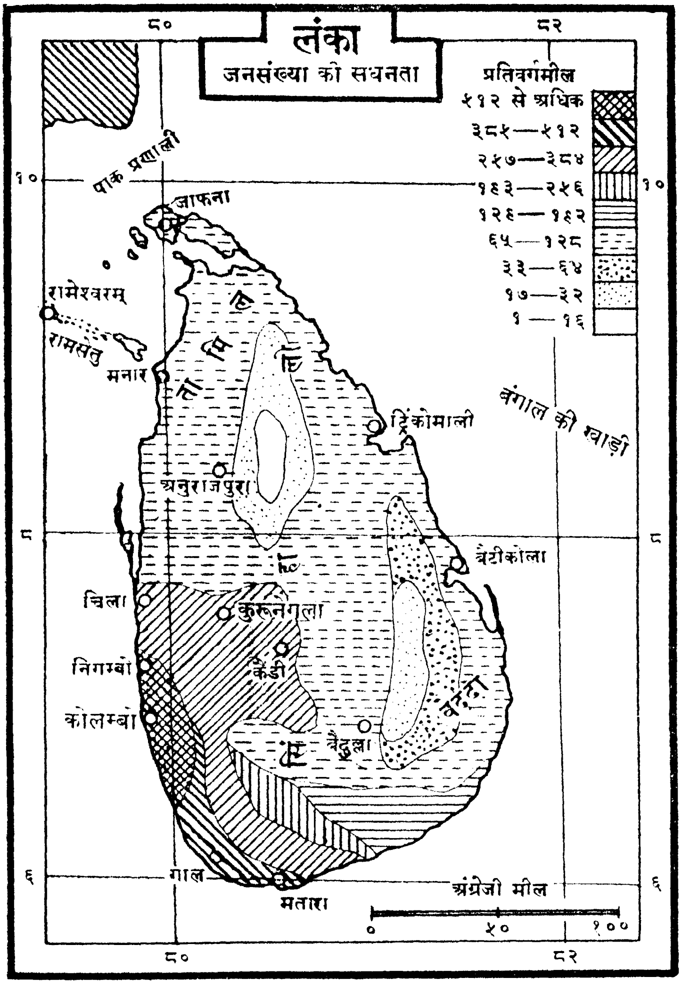


३१—लंका का एक रिक्शा खींचने वाला।

की संख्या सबसे अधिक (३५ लाख) है। लङ्का को सिंहल द्वीप भी कहते हैं। इसी से यहाँ के बौद्ध लोग सिंहाली कहलाते हैं। सिंहल या सिंहाली शब्द सिंह से बना है। सचमुच बहुत पहले सिंहाली लोग सिंह के समान वीर थे। आजकल उनके शरीर और चेहरे से


१. सिंहाली,
२. तामिल,
३. मूर (मुसलमान)
४. चेट्टी (महाजन),
५. अफ़ग़ानी,
६. मलय (क्रुर्क)
७. वेद्दा मूल निवासी
(इस का चित्र आगे देखिये)
जाफना
मुलैटिवू
मनार
ट्रिंकोमाली
कारातिवी
बेटीकोला
चिला
कोलम्बो
ओकांडा
याल
हम्बन टोला
गाल
मतारा

३२—लंका-निवासी



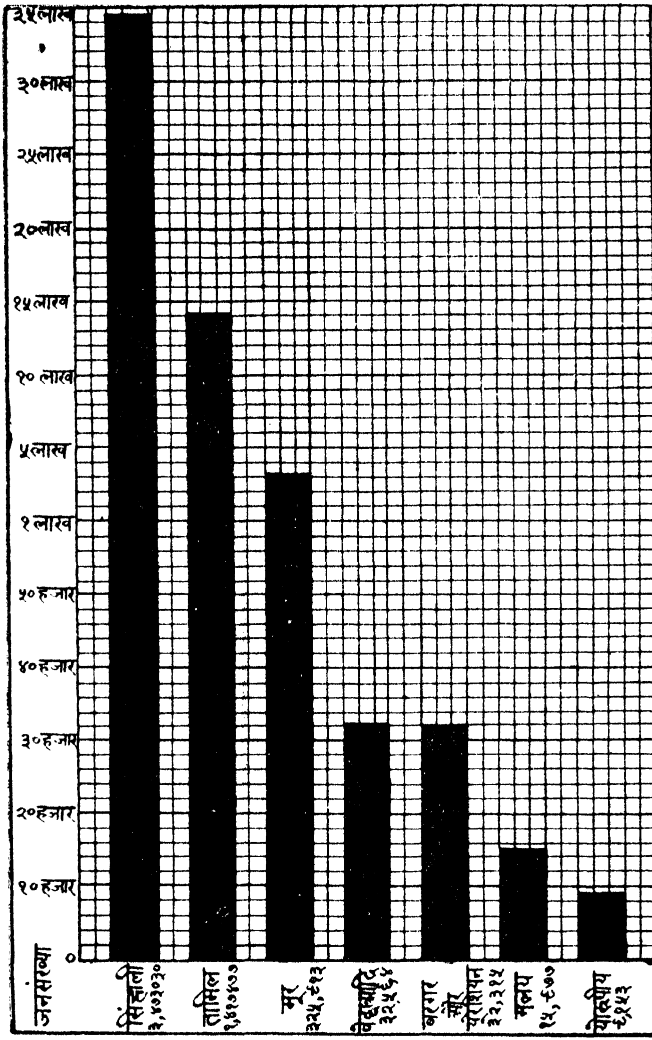
२३—जनसंख्या की सघनता

उतनी वीरता का कम परिचय मिलता है। अहिंसा-धर्म के मानने वाले होने पर भी वे कभी कभी ज़मीन के पीछे लड़ बैठते हैं और एक दूसरे को मार भी डालते हैं। वैसे सिंहाली लोग बहुत शान्त होते हैं। वे लंहगे के



२४—कैंडी के एक धार्मिक नाचने वाले के सिर की भेष-भूषा

समान एक बहुत ही ढीला तहमत पहनते हैं। इसमें कच्छ लगाने की ज़रूरत नहीं होती है। ऊपर का शरीर अक्सर नंगा रहता है। शहर के कुछ लोग सफेद ढीला कुरता या बनियान पहन लेते हैं। उनके सिर पर स्त्रियों


३५लाख
३०लाख
२५लाख
२०लाख
१५लाख
१० लाख
५लाख
१लाख
५०हजार
४०हजार
३०हजार
२०हजार
१०हजार
०
जनसंख्या
सिंहाली
तामिल
मूर
बरगर और यूरेशियन
मलाय

३४—जन-संख्या।

की तरह लम्बे बाल होते हैं। इन्हें कभी वे कन्धों तक लटकने देते हैं। कभी वे उनका चुटीला बना कर सिर के पीछे की ओर गाँठ लगा लेते हैं। इस चुटीले में वे



२६—लंका की एक स्त्री भिक्षु को श्रद्धापूर्वक भिक्षा दे रही है

कछुए की हड्डी का बना हुआ गोल कंघा भी खोंसे रहते हैं। भेष प्रायः एक होने से कभी कभी स्त्री और पुरुष का पहचानना कठिन हो जाता है। सिंहाली स्त्रियों

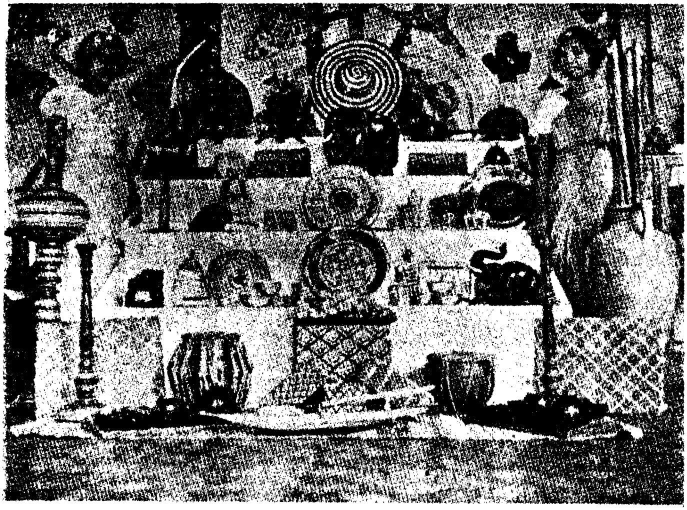
में परदे का नाम नहीं है। स्त्री-पुरुषों में समानता का व्यवहार है। सिंहाली लोग बौद्ध भिक्षुओं का आदर



२७—लंका के गांवों में बैलगाड़ी बड़े काम की होती है। कुछ सिंहाली अपनी गाड़ी में दो बैल जोतते हैं। कुछ लोग एक ही बैल जोतते हैं। वे एक गांव से दूसरे गांव को ऐसी ही गाड़ी पर सवार होकर सफर करते हैं।

करते हैं। भिक्षु लोग मठों में रहते हैं और अपना समय प्रायः बौद्ध ग्रन्थों के पढ़ने में बिताते हैं। इनकी सिंहाली

भाषा में संस्कृत और पाली शब्दों की अधिकता रहती है। सिंहाली लोग कई त्योहार मनाते हैं। उत्सवों में हिन्दुओं की तरह नाचना गाना खूब होता है। वे मुरदे को जलाया करते हैं। सिंहाली लोग लङ्का के दक्षिणी



३८—लंका की बनी हुई वस्तुओं का एक चित्र

और पश्चिमी भागों में बसे हुये हैं। पहाड़ी भाग के सिंहाली अधिक हृष्ट पुष्ट हैं। सिंहाली लोग आराम तलबी पसन्द करते हैं। इसी से मेहनत, कारबार और व्यापार के काम दूसरे लोगों के हाथ में हैं।

सिंहालियों के बाद संख्या में दूसरा स्थान (१४ लाख)



२६— लंका का मछुआ (मछली मारने वाला) अपने पूरे सामान के साथ

तामिल लोगों का है। तामिल लोग लङ्का के उत्तरी और पूर्वी प्रान्तों में बसे हुए हैं। ये हिन्दू धर्म को मानते हैं और दक्षिण-भारत की तरह विशाल मन्दिर बनाते हैं। वे खेती का काम पसन्द करते हैं। कुछ लोग लेन



४० — लंका में बाल बनाने का ढंग

देन और व्यापार का काम करते हैं। चाय, रबर आदि के बगीचों में काम करने वाले भी तामिल कुली ही होते हैं।

लंका के अत्यन्त प्राचीन मूल निवासी वेद्दा और

रोदिया लोग हैं। वेद्दा लोगों की संख्या घटते घटते इस समय केवल ४००० रह गयी है। वेद्दा लोगों को प्राकृतिक जीवन बहुत अच्छा लगता है। वे दूसरे लोगों से दूर जंगलों में रहते हैं। वे जंगली फल और जानवरों



४१—लंका के ढोल और नगाड़ा बजाने वालों की एक टोली

के शिकार से गुज़र करते हैं। कुछ लोग पत्तों से ही अपने शरीर के नंगे भाग को छिपाते हैं। वे बड़े ईमानदार होते हैं और अतिथि का बड़ा सत्कार करते हैं।

जंगलों में भटके हुये लोगों को वे बड़ी खुशी से रास्ता बता देते हैं। रात हो जाने पर उन्हें वे अपने घरों (झोपड़ों) में ठहरा भी लेते हैं। लेकिन जो लोग उनकी स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखते हैं उन्हें वे मार भी डालते हैं। कहा जाता है श्रीरामचन्द्रजी की लंका विजय के बाद जो आर्य लोग यहां आये उन्हीं के वंशज वेदा लोग हैं।

लंका में लगभग सवा तीन लाख मूर (मुसलमान) हैं। यह लोग उन अरबी सौदागरों की संतान हैं जो पुर्तगालियों के पहले यहां व्यापार करने आये थे। कुछ यहीं के लोगों से हिल मिल गये। अधिकतर मूर लोग तामिल भाषा बोलते हैं। ये शरीर के हृष्ट पुष्ट होते हैं और शहरों में अक्सर सौदागरी का काम करते हैं। वे अपने मुरदों को गाड़ते हैं। जंगली भागों में गीदड़ अक्सर लाशों को खा जाते हैं। उनसे मुरदे को बचाने के लिये वे उसे खुदी हुई छोटी नाव में रख कर गाड़ते हैं। ऊपर से पत्थर और कांटे रख देते हैं। लंका में योरुपीय लोगों की संख्या १०,००० से अधिक नहीं है। वे अधिकतर बड़े बड़े सरकारी नौकर, बगीचों के मालिक और धनी व्यापारी हैं। पुर्तगाली, डच, अंग्रेज़ और

दूसरे गोरे लोगों के सम्पर्क से लङ्का में वर्णसंकर लोगों की संख्या लगभग ३५ हज़ार है। इन्हें अक्सर बर्गर कहते हैं। वे वकालत डाक्टरी आदि कई पेशों में लगे हुए हैं।

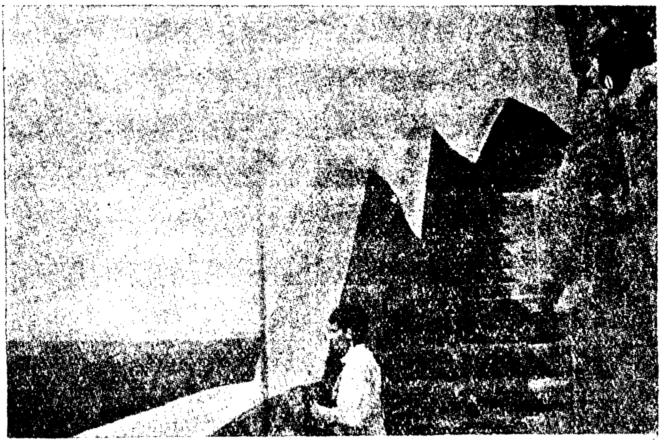
किसी समय (अंग्रेज़ों से पहले) लङ्का में हालैंड के डच लोगों का राज्य था। वे अपने साथ पूर्वी द्वीपसमूह से कुछ सिपाही भी ले आये थे। यही आजकल मलय कहलाते हैं और क्लर्की का काम करते हैं। इनके अतिरिक्त लङ्का में कुछ सिन्धी, मारवाड़ी और अफगान आदि भी हैं। पर इनकी संख्या अधिक नहीं (कुछ ही सौ) है।



लंका के उजड़े हुए नगर

अनुराजपुर—लंका के जिस भाग में इस समय घना वन है वहाँ अब से २००० वर्ष पहले एक आलीशान नगर था। यह नगर वर्तमान लन्दन के बराबर था। इसका नाम अनुराजपुर था। प्राचीन अनुराजपुर के भवन कई मंज़िल ऊंचे थे। राजमहल नौ मंज़िला ऊँचा था। इसकी छत पीतल (कांसे) की बनी थी। अन्दर ६०० कमरे थे। इनमें ताँबे के खम्भे थे। दूर से धूप में कांसे का यह महल एक चमकते हुये सूर्य के समान मालूम पड़ता था। लन्दन में सेंटपाल गिरजे का गुम्बद वहां की सब से ऊँची इमारत है। लेकिन अनुराजपुर का अभयगिरि दगोबा उससे भी ५६ फुट अधिक ऊँचा था। इस अकेले दगोबा में इतनी ईंटें लगीं थीं कि उनसे एक मामूली शहर बन सकता था। अनुराजपुर शहर के उत्तरी दरवाज़े से शहर के दक्षिणी भाग को जाने वाली चौड़ी सड़क १६ मील लम्बी थी। इस समय जितने मनुष्य सारे लंका द्वीप में रहते हैं उनसे कुछ ही कम (३५ लाख) इस अकेले प्राचीन अनुराजपुर शहर में रहते थे। प्राचीन रोमन लोगों के

बनवाये हुये स्नानागार जर्जर हो गये हैं। लेकिन प्राचीन सिंहाली लोगों ने इतने सुन्दर और मज़बूत पत्थरों के तालाब-घाट बनवाये कि वे इस समय भी ज्यों के त्यों



४३—सिगिरिया (श्रीगिरि) की चोटी पर चढ़ने के लिये सम्राट कश्यप ने जो जीना बनवाया था उसकी दीवारों पर लगा हुआ चूना (चूनम) १५०० वर्ष बीत जाने पर भी ज्यों का त्यों बना है।

बने हुए हैं। इन तालाबों में किनारे पर लगे हुए पेड़ों की छाया बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती है। जगह जगह पर औषधालय और धर्मशाला बने हुए थे।

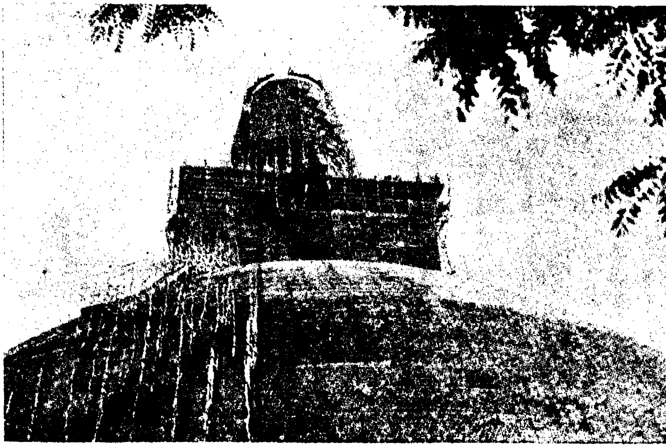
नगर के बीच में राजमहल था। इस महल में राज सिंहासन शुद्ध हाथी दांत का बना हुआ था। इसमें सोने का सूर्य, चांदी का चन्द्रमा और मोतियों के तारे जड़े हुए थे।



४४—सिगिरिया (श्रीगिरि) की चोटी पर बना हुआ सभाभवन ठोस चट्टान को काटकर बनाया गया था। आजकल इसके चारों ओर जंगल दिखाई देता है। पहले यहां खेती होती थी।

शहर के बाहरी भाग में बग़ीचे लगे थे। इनमें उत्सव के अवसर पर मन्दिर, दगोबा और राजमार्गों को सजाने

के लिये तरह तरह के फूल लगे थे। जिस दगोबा में बुद्ध भगवान की अस्थि थी वह कई अवसरों पर शिखर से तली तक फूलों और लताओं से सजाया जाता था। तालाबों के बाहर मीलों तक धान के खेत थे। इनमें

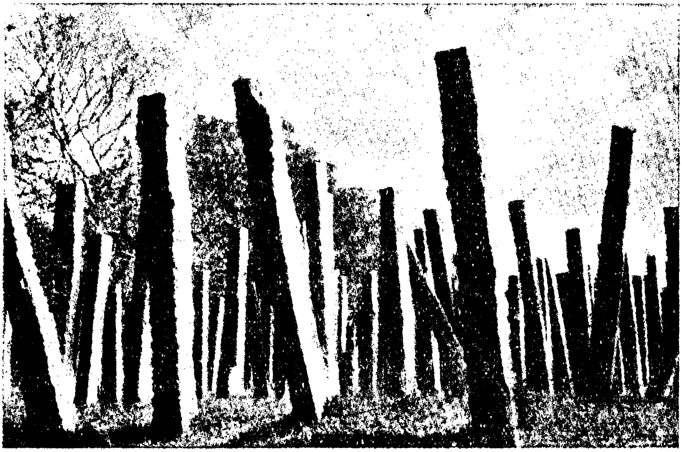


४५—अनुराजपुर का विशाल दगोबा। इस समय इसकी मरम्मत हो रही है।

तालाबों से सिंचाई होती थी। उन दिनों में लंका में इतना चावल उगता था कि बाहर से चावल मँगाने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं पड़ती थी।

लंका की प्रधान सम्पत्ति रत्न थे। लंका के लाल,

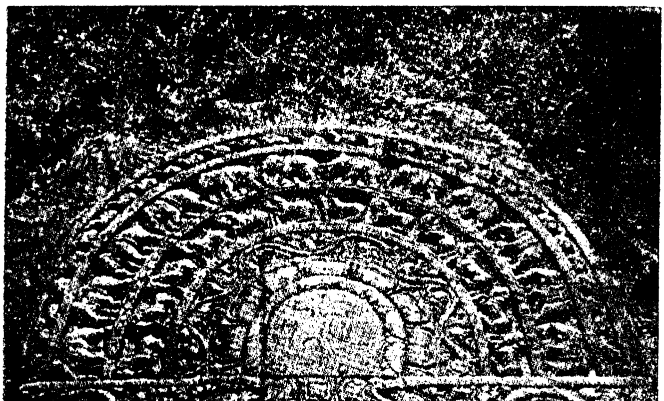
पुखराज और मोती मोल लेने के लिये दूर दूर के सौदागर यहां रेशम, कालीन, चन्दन और गुलाम (दास) बेचने आते थे। लंका के राजदूत रोम और संसार के दूसरे सभ्य शहरों को जाते थे।



४६—अनुराजपुर के १६०० सुनहले खम्भों वाले और नौ मंज़िला ऊंचे कांसे के महल के भग्नावशेष

लंका के बड़े बड़े भवन धार्मिक जोश के आवेश में बने। ईसा से २८८ वर्ष पूर्व भारत का राजर्षि महेन्द या महेन्द्र धर्म प्रचार करने के लिये लंका में पहुँचा। उसने

उस समय के राजा तिस्स को अपने प्रेम के वश में कर लिया। जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध भगवान ने ज्ञान प्राप्त किया, उसकी एक शाखा यहां लाई गई। इसके स्वागत के लिये लंका के राजा तिस्स ने सोने के हल में



४७—अनुराजपुर और पोलोनारुआ के प्राचीन महलों में जाने के लिये अर्द्धचन्द्राकार पत्थरों की सीढ़ियों पर भी सुन्दर कारीगरी की गई थी।

हाथियों को जोत कर हद बन्दी की। कई विशाल मन्दिर और दगोबा बनवाये गये। इसी समय पृथिवी हिली और बोधि-वृक्ष की शाखा अपने आप ज़मीन में लग गई। इस समय लंका का बोधि-वृक्ष लगभग २२०० वर्ष का

हो चुका है। सभ्य संसार का यह सबसे पुराना ऐतिहासिक वृक्ष है। पीले कपड़े पहने हुए लंका के भिक्षु उसी पुरानी लगन से इसकी रक्षा करते हैं।



४८ - पोलानारुश्रा की पुष्प वेदी पत्थरों की चारदीवारी से घिरी है। ऊँचे खम्भों पर अपूर्व चित्रकारी है।

सिगिरिया या श्रीगिरि की स्थापना लंका के राजा कश्यप ने की। इसकी कहानी इस प्रकार है:—४५९ ईस्वी में धातुसेन लंका का राजा हुआ। उसके शासन-काल में तामिल लोगों का लंका पर आक्रमण हुआ। धातुसेन

के एक बड़ी सुन्दरी कन्या थी। उसने इस कन्या का ब्याह अपने सेनापति के साथ कर दिया। कन्या के साथ कुछ अच्छा व्यवहार न हुआ। राजा ने क्रोध में आकर सेनापति की माँ को जलवा दिया। सेनापति ने राजा के बड़े लड़के कश्यप को मिलाकर विद्रोह का झंडा खड़ा किया। धातुसेन पकड़ लिया गया और दीवार में चुनवा दिया गया। राजा के छोटे लड़के मोगल्लन ने बदला लेने का संकल्प किया। इस संकल्प को पूरा करने के लिये वह भारतवर्ष में सहायता मांगने के लिये गया। कश्यप को डर लगा। उसने अनुराजपुर को छोड़कर सिगिरिया की अजेय चोटी पर पहाड़ को कटवा कर एक अत्यन्त दुर्गम महल बनवाया। सिगिरिया के महल को बने हुए १५० वर्ष बीत चुके हैं। लेकिन इमारतों का चूना अभी तक मज़बूत जुड़ा हुआ है। यहां के चित्र इतने सुन्दर हैं मानों वे अभी हाल में बनाये गये हैं।

मोगल्लन ने अपना संकल्प पूरा किया। भारतवर्ष से सहायता लाकर उसने कश्यप पर चढ़ाई की और फुस-लाकर उसे नीचे मैदान में बुलवाया। कश्यप लड़ाई में मारा गया। इसके बाद उत्तरी भाग पर बार बार हमले

होने लगे। अनुराजपुर उजड़ गया।

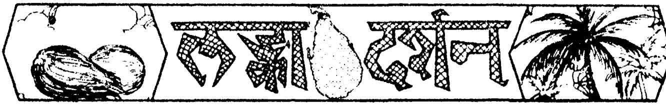
७६६ में सिंहालियों ने पोलोनारुआ नगर में राजधानी बनाई। १२०० तक पोलोनारुआ ही लंका की राजधानी रहा। यहां भी लंका के राजाओं ने बहुत से मन्दिर और तालाब बनवाये। इनमें पराक्रम राजा बहुत प्रसिद्ध है। इसके शासन-काल में १४७० नये तालाब बने। लंका की जहाज़ी शक्ति बहुत बढ़ गई। पराक्रम ने एक ओर भारत के तट पर और दूसरी ओर कम्बोडिया (स्याम) देश पर चढ़ाई की। पराक्रम राजा ने एक सात मंज़िला ऊँचा महल बनवाया। इसकी दीवारें १० फुट मोटी थीं। कई सुहावने मन्दिर बने। अर्द्धवृत्ताकार महराबों पर हंस, सिंह और हाथियों के सुन्दर चित्र खुदे थे। एक दुमंज़िले घेरे के अन्दर हिन्दु मन्दिर में अनेक देवताओं के चित्र हैं। पोलोनारुआ के भग्नावशेष भी आलीशान हैं। गलविहार में पत्थर की खुदाई का काम आश्चर्यजनक है। बुद्ध भगवान की ४३ फुट लम्बी मूर्ति लेटी हुई है। सामने उनका प्रिय शिष्य आनन्द खड़ा है। बुद्ध भगवान की मुँदी हुई विशाल आँखों से विचित्र शक्ति और शान्ति टपक रही है। उत्सव के समय यहाँ असंख्य सिंहाली

दर्शन करने आते हैं। पुरानी चाल के सिंहाली बड़े बड़े बालों का चुटीला बांधे रहते हैं। नई चाल के लोग बाल कटाये रहते हैं। दोनों ही छायादार बैलगाड़ियों में सवार होकर आते हैं। उत्सव के समय यात्री एक क्षण के लिये भूल जाता है कि पोलोनारुआ लंका की राजधानी नहीं है। पोलोनारुआ में भी सिंहालियों को शान्ति न मिली। १२४० ईस्वी में यह आलीशान शहर उजड़ गया। सिंहालियों ने भागकर कभी कहीं कभी कहीं अपनी राजधानी बनाई। अन्त में कोलम्बो के पास कोट्टा शहर में विश्राम लिया। यहां पुर्तगालियों के हमले हुए और कुछ सदियों के लिये उनकी राज्यश्री छिन गई और वे योरुपीय शासन के चंगुल में फँस गये।

मिहन्तले लङ्का के बौद्ध लोगों के लिये परम तीर्थ स्थान है। यह अनुराजपुर से केवल आठ मील दूर है। यहां पहुँचने के लिये १००० फुट ऊँचा चढ़ना पढ़ता है। ऊपर जाने के लिये १८०० सीढ़ियां हैं। सम्राट अशोक के सुपुत्र महेन्द्र और लङ्का के राजा देवानां पिय तिस्स से यहीं भेंट हुई थी। लङ्का का राजा अपने अनुयाइयों के साथ हिरण के आखेट से लौट रहा था। यहाँ महेन्द्र

की बातचीत का राजा पर ऐसा असर पड़ा कि वह बौद्ध हो गया। यहीं से महेन्द्र ने बौद्ध धर्म का प्रचार सारे लङ्का देश में किया। आजकल जंगल से घिरे हुए इस स्थान के पड़ोस में बन्दर बहुत रहते हैं। चोटी के पास एक स्थान है। इसे महेन्द्र की शय्या कहते हैं। इस स्थान से बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। यहां से कुछ ही दूरी पर महेन्द्र की समाधि है। ऊपर से अनुराजपुर के दगोबा जंगलों के ऊपर उठे हुए कुछ धुँधले दिखाई देते हैं। उतरते समय यहां सिंह, सर्प और कई दूसरी नग्न मूर्तियां दिखाई देती हैं।

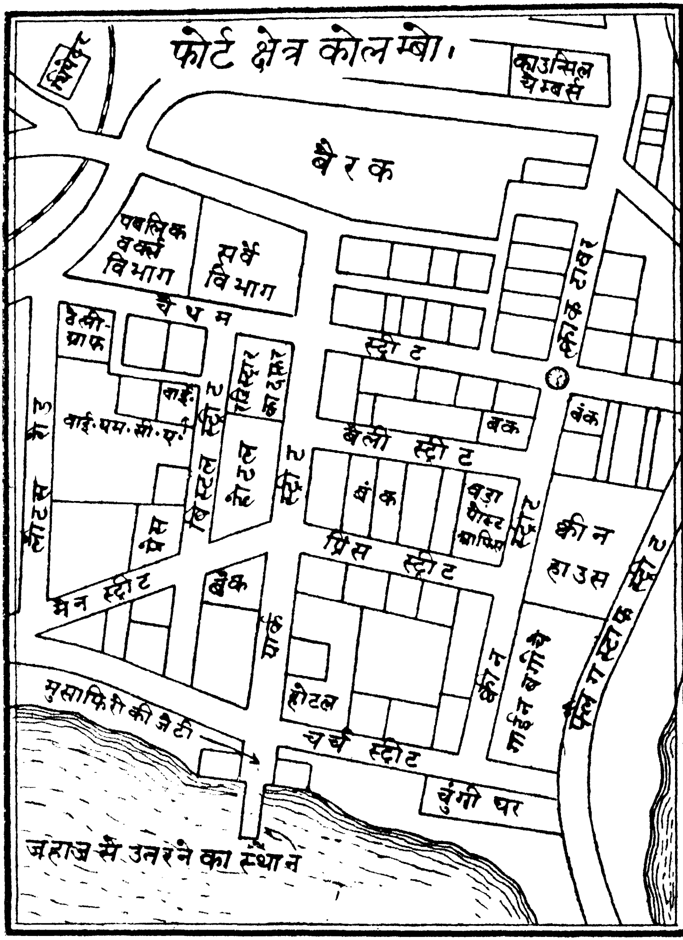
१४वीं सदी में कुरूनेगला लङ्का की राजधानी था। पर वहां अब राजधानी का कोई चिन्ह शेष नहीं रहा।



कोलम्बो

लंका के पश्चिमी तट पर कोलम्बो की स्थिति बड़े मार्के की है। योरुप से पूर्वी एशिया और आस्ट्रेलिया को आने जाने वाले जहाज़ों के लिये यह एक बहुत ही अच्छा विश्रामघर है। दक्षिणी अफ्रीका का डर्बन और पश्चिमी आस्ट्रेलिया का पर्थ बन्दरगाह यहाँ से प्रायः समान दूरी पर हैं। सिंगापुर और अदन भी यहाँ से कुछ कुछ समान दूरी पर ही हैं। कोलम्बो हमारे इतना पास है कि हम लंका को हिन्दुस्तान का समुद्री पहरेदार कह सकते हैं।

कोलम्बो का बन्दरगाह प्राकृतिक न होने पर भी बहुत अच्छा बना लिया गया है। ताड़ और नारियल के पेड़ों से घिरा हुआ कोलम्बो का किनारा जहाज़ से उतरने वाले यात्री को बड़ा सुन्दर मालूम होता है। कोलम्बो का बन्दरगाह एक मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। यहां बहुत सी देशी नावें और कुछ विदेशी जहाज़ बराबर दिखाई देते रहते हैं। कुछ जहाज़ कोयला, कपड़ा, मशीनें उतारते दिखाई देते हैं। कुछ जहाज़ चाय,



२०—फोर्ट-क्षेत्र, कोलम्बो

रबर, नारियल और मसाला, सम्बागो और दूसरा सामान भरते दिखाई देते हैं।

जहाज से उतरने पर कोलम्बो का जो भाग पहले



४१—कोलम्बो के बन्दरगाह का एक दृश्य

पड़ता है वह फोर्ट कहलाता है। इस समय यहां कोई किला नहीं है। लेकिन अबसे पचास वर्ष पहले यहां डच

लोगों का बनवाया हुआ किला था। यहां की प्रधान सड़क को यार्क स्ट्रीट कहते हैं। बड़ी दुकानों के बराम्दे और नारियल और दूसरे पेड़ों की छाया रहने से धूप



५२—कोलम्बो का विक्टोरिया पार्क

के समय भी यहां चलने वालों को कष्ट नहीं होता है। बड़े बड़े दफ्तर, गवर्नर का निवास, प्रसिद्ध जौहरियों और रेशम के सौदागरों की दुकानें यहीं हैं। कुछ दुकानों में बहुमूल्य मणि, सोने चांदी के आभूषण पीतल के

कामदार बर्तन, हाथी दांत के खिलौने, कछुए की हड्डी की कंघी, इरानी कालीनें और दूसरी चीजें खरीदी जा



५३—फोर्ट (कोलम्बो) की सड़क का एक दृश्य

सकती हैं। कुछ दुकानदार मूर (मुसलमान) हैं।

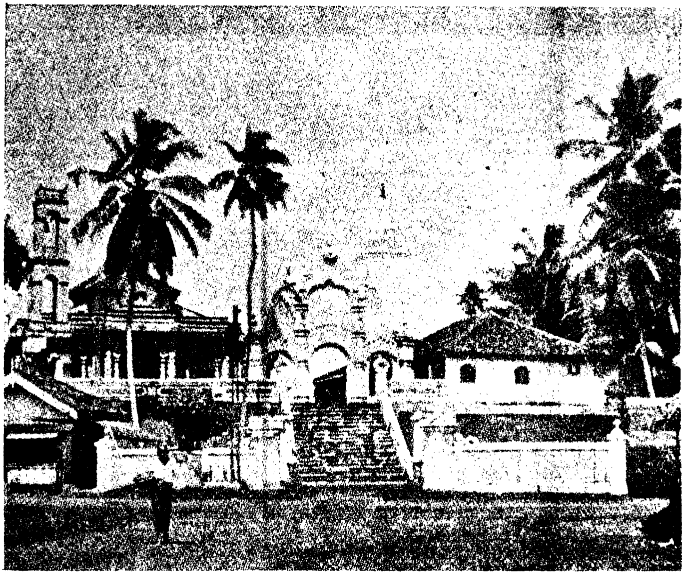
अधिकतर सिंहाली हैं। ट्रैम या मोटर बसों में यूरेशियन



४४—मुटवल का तट

क्लर्क, टीका लगाये हुये तामिल महाजनों और दूसरे लोगों की भीड़ रहती है।

पेटा मुहल्ले में कोलम्बो की पुरानी झलक देखी जा सकती है। यहाँ पुराना टाउन हाल, कचहरी, हिन्दू मन्दिर, मस्जिद, डच लोगों का पुराना गिरजा और कब्रिस्तान है।



४४—केलानी का मन्दिर

सिनामन गार्डन्स (दारचीनी के बगीचों) में कोलम्बो के सुन्दर बंगले, योरुपीय लोगों के क्लब,

रेसकोर्स (दौड़ का मैदान) और दूसरे सुन्दर स्थान हैं। इस मुहल्ले में इस समय दारचीनी का कोई बगीचा नज़र नहीं आता है। लेकिन पहले (जब हालैंड वालों



४६—कोलम्बो के प्रसिद्ध मुहल्ले पेटा का एक दृश्य

के हाथ में यहाँ के मसाले का निरंकुश व्यापार था) यहाँ दारचीनी के बगीचे थे। इसी से इसका यह नाम पड़ा।



५७ - माउंट लवीनिया

योग्य है। इसमें पुराने समय की बहुत सी चीज़ें देखने को मिलती हैं। एक कमरे में पुर्चगाली और डच लोगों का पुराना सामान और शीशे की चीजें रक्खी हुई हैं। यहीं हीरा जवाहिरात की पुरानी सिंहाली कारीगरी के नमूने देखे जा सकते हैं। कांसे के बर्तनों की कारीगरी भी अच्छी है। एक भाग में ताड़ के पत्तों पर हाथ से लिखी हुई प्रतियां रक्खी हुई हैं। इसके पास ही कोलम्बो का पुस्तकालय है जो लंका भर में सबसे बड़ा है। शुक्रवार को छोड़कर यह अजायब घर दिन के १० बजे से शाम के छः बजे तक बराबर खुला रहता है। कुछ ही दूरी पर यहां का ज़ू या चिड़ियाघर है। चिड़ियाघर में शेर, बन्दर, सांप आदि तरह तरह के जानवर हैं। एक्वेरियम में तरह तरह की मछलियां विक्टोरिया पार्क में तरह तरह के पेड़ हैं। पेड़ों और पौधों के नाम भी लिखे हुए हैं।

कोलम्बो का अशोकरामया नाम का प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर अवश्य देखना चाहिये। मन्दिर नया है। लेकिन यह सम्राट अशोक की पुण्यस्मृति का सूचक है, जिसने अपने प्यारे पुत्र को लंका में बौद्ध धर्म का

प्रचार करने भेजा था। इस मन्दिर को बनाने और सुशोभित करने में यहां के बौद्धों ने बहुत साधन लगाया है। संसार के दूसरे देशों के उदार बौद्धों ने भी इसके लिये चन्दा भेजा है। इस मन्दिर में चित्रों द्वारा कई ऐतिहासिक घटनायें अंकित की गई हैं। बुद्ध भगवान की मूर्ति ६ गज़ ऊँची है और बहुत ही सुन्दर बनी है। यहां से लगभग ६ मील की दूरी पर केलानी का पुराना मन्दिर है। यह सन् १३०२ ई० में बनाया गया था।

स्टोव द्वीप में पहले डच लोग अपने गुलाम रखते थे। आजकल इसमें अधिकतर मलय और अफगानी लोग रहते हैं। यह द्वीप कोलम्बो से मिला हुआ है।

नगर

निगम्बो एक छोटा लेकिन अत्यन्त सुन्दर नगर है। यह कोलम्बो से लगभग २४ मील दूर है। नगर समुद्र और एक अनूप (लेगून) के बीच में बसा है। कहा जाता है कि डच लोगों ने इस नगर को बसाया था। १६७८ ई० में यहां एक किला बनवाया गया था जो इस समय भी अच्छी हालत में है। समुद्र में स्नान करने और मछली मारने के लिये यह एक अच्छा स्थान है। मोटर द्वारा डेढ़ दो घंटे में बड़े आराम से यात्री यहां आ सकता है।



४६—कैंडी का एक सरदार

गाल नगर कोलम्बो से ७२ मील दक्षिण की ओर स्थित है। १७वीं सदी में गाल नगर ही लंका का प्रधान बन्दरगाह था। लेकिन आजकल यहां बहुत कम व्यापार होता है। वे सरकारी इमारतें जिनको डच

लोगों ने पहले बनवाया था आजकल प्रायः खाली पड़ी हैं। जब से बड़े बड़े जहाज़ बनने लगे तब से कोलम्बो लंका का प्रधान बन्दरगाह हो गया और गाल पिछड़ गया। फिर भी गाल एक सुन्दर स्थान है। यहां की कई इमारतें देखने योग्य हैं।



६०—जाफना का एक तामिल

वेलीगामा— गाल से १७ मील की दूरी पर वेलीगामा नगर इसी नाम की खाड़ी के सिरे पर ताड़ों के बीच में बहुत सुन्दर बसा है। यहाँ समुद्र-स्नान करने के लिये दूर दूर से लोग आते हैं। कुछ ही दूरी पर एक राजा की पुरानी मूर्ति बनी है।

कैंडी—कोलम्बो से ७२ मील की दूरी पर अधिक

उँचाई (समुद्र तल से १६८० फुट) पर स्थिति होने के कारण कैंडी अधिक शीतल रहता है। सोलहवीं सदी में यह नगर सारे लंका द्वीप की राजधानी बन गया। यहां का दलदमालिगा या मालिगावा मन्दिर लंका भर



६१—नुवाराएलिया का एक विहंगम दृश्य। इसकी चोटी लंका भर में सबसे अधिक ऊंची है। इसकी तलहटी में एक रमणीक झील है। यहां का स्वास्थ्य कर जलवायु का आनन्द लेने के लिये दूर दूर से लोग आते हैं।

में प्रसिद्ध है। यहां बुद्ध भगवान का एक दांत रक्खा हुआ है जो विशेष अवसरों पर प्रदर्शित किया जाता है।

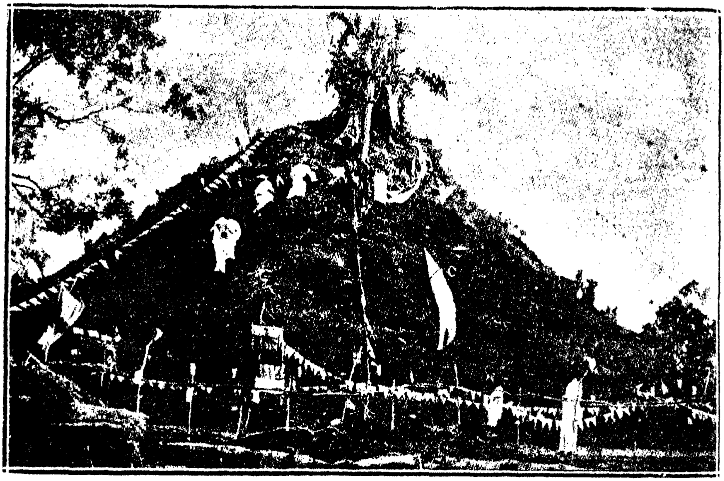
पहले इस मन्दिर से राजमहल तक एक सुरंग बना था। राजा इसी सुरंग मार्ग से मन्दिर में पूजा करने आते थे। आजकल यहां लंका की कला या कारीगरी की चीजों को प्रदर्शित करने के लिये एक अजायबघर बना है। यहां की झील भी बड़ी सुन्दर है। परेहरा के उत्सव पर यहां दूर दूर के लोग आते हैं। हाथियों का जलूस बड़ा सुन्दर लगता है।

यहां से लगभग तीन मील की दूरी पर लंका का प्रसिद्ध पेरा डेनिया गार्डन है। यहीं संसार के भिन्न भिन्न देशों के प्रसिद्ध पेड़ लगे हुये हैं।

एडम्सपीक को बुद्धपाद या रामपाद भी कहते हैं। यहां पहाड़ की चोटी पर एक छोटा मन्दिर है। एक चट्टान पर पैर का चिन्ह बना है। यह हिन्दू, बौद्ध और मुसलमानों के लिये एक तीर्थ स्थान है।

जाफना नगर इसी नाम के उत्तरी प्रान्त की राजधानी है। पहले यह एक बड़े तामिल राज्य की राजधानी था। आजकल यह तम्बाकू के कारबार के लिये प्रसिद्ध है। जाफना की बनी हुई सिगरेटें सारे लंका द्वीप में पी जाती हैं।

ट्रिंकोमाली या त्रिकोणमलय का प्राकृतिक बन्दरगाह बहुत ही गहरा और शान्त है। यहाँ जहाज़ी बेड़ा रहता है। स्वामी शिला के ऊपर एक पुराना शिव-



६२—ट्रिंकोमाली का महा मंगल चेटिया

मन्दिर बना था। यहां से कुछ ही दूरी पर गरम पानी के सोते हैं।

नुवारा इलिया या नूरालिया ६२४० फुट की ऊँचाई पर बसा है। यह नगर लंका भर में सबसे

अधिक शीतल है। इसके पड़ोस का दृश्य अत्यन्त मनोहर है। छः मील की दूरी पर हकगला के बगीचे हैं।

३० मील की दूरी पर बन्दरवेला का नगर समुद्र तल से ४ हज़ार फुट की ऊँचाई पर बसा है। यह स्थान नुवारा इलिया से कम ठंडा है। लेकिन इसके पड़ोस का दृश्य कम मनोरम नहीं है।

दियातलवा नगर पाटन (घास से घिरे हुए पठार) पर स्थिति है। इसके दोनों ओर सपाट पहाड़ियां हैं। इसकी ऊँचाई भी ४ हज़ार फुट है। यहां पर दूर दूर से लोग सैर करने आते हैं। लड़ाई के अवसर पर बोअर और जर्मन क़ैदी यहां रक्खे गये थे।

इला—यह बन्दरवेला से साढ़े सात मील दूर है। कुछ लोगों की राय है कि यह स्थान न केवल लंका वरन् संसार भर में अपनी प्राकृतिक सुन्दरता में सर्वोत्तम है।

देश दर्शन

लंका और भारतवर्ष का सम्बन्ध

(ले०—श्री काका कालेलकर)

महात्मा जी ने लंका में जाते ही इस सुन्दर द्वीप को भारत का मोती कहा। लंका का आकार गिरते हुए बूँद के आकार जैसा अथवा उसी घाट के मोती जैसा देखकर शायद उन्होंने यह उपमा दी हो। उत्तरी किनारे पर प्राचीन काल से मोती निकलते रहे हैं। सम्भव है इसी लिये उन्होंने यह उपमा दी हो अथवा भारतधर्म की सीप में से बौद्ध धर्म रूपी जो मोती निकला उसकी यहाँ प्रतिष्ठा देख कर यह नाम दिया इसका हमें पता नहीं। किसी भी दृष्टि से देखें लंका का रमणीय द्वीप भारत का सचमुच मोती ही है और भारत से आया हुआ बौद्ध धर्म प्राचीन काल से इस द्वीप का दीप* रह चुका है।

ईश्वर ने इस मोती के लिये स्थान भी अच्छा पसन्द किया है। भूमध्यरेखा के पास होने से और चारों

---

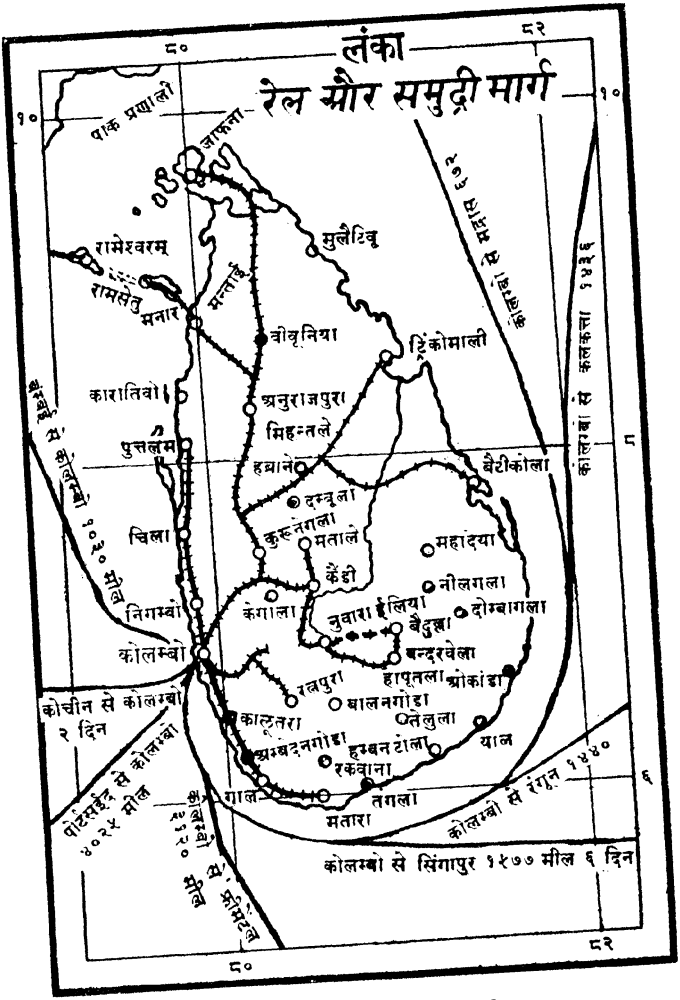
* द्वीपदीपों।

ओर महासागर के पानी से घिरे होने से वहाँ की जलवायु सब तरह से समशीतोष्ण और स्वास्थ्यकर है। उष्णता तथा पानी की बहुतायत के कारण वनस्पति भी असाधारण है।

- शायद ही कोई ऐसा भारतवासी हो जिसने लंका का नाम न सुना हो। महाकवि वाल्मीकि ने अपने काव्य द्वारा भारत को लंका के साथ जोड़ दिया है। रामायण ही हमारा सब से बड़ा सेतु है। द्रोणगिरि की वनस्पति लंका में पहुँचाने वाला हनुमान था। राम का दूत होते हुए भी राष्ट्रकवि वाल्मीकि का मानस पुत्र अथवा संस्कृति पुत्र अवश्य था। ऐतिहासिक कल्पनायें चलाने वाले सीता को भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि समझते हैं। कुछ भी हो लंका और भारत का सम्बन्ध अविभाज्य है।

जो काम प्राचीन काल के रामायण ग्रन्थ ने किया वही कार्य बौद्ध काल में दीप वंश ने किया है। बौद्ध दन्तकथायें कहती हैं कि लंका में नागलोक रहते थे। भयानक भूत और पिशाच रहते थे। बुद्ध भगवान ने वहाँ जाकर धर्म और संस्कृति की स्थापना की और उसे मनुष्य के रहने योग्य बनाया।

ऐतिहासिक लोग कहते हैं कि राजकुमार विजय सब से पहले लंका में गया। अब यह विजय राजकुमार



६४—रेल और समुद्री मार्ग

बंगाल का था या गुजरात का इसका पूरा निश्चय अभी तक ऐतिहासिक खोज से नहीं हो सका।

गुजरात में आज भी एक महावरा प्रचलित है—"लंका नी लाड़ी अनि घोघा न वर" (लंका की बहू और घोघा का वर) घोघा काठियावाड़ का एक इतिहास-प्रसिद्ध बन्दरगाह है। गुजरात के वैश्य प्राचीन-काल से लंका क्या जावा तक व्यापार के लिये जाते थे और वहाँ से बहुत सा धन लाते थे। वे कन्यायें भी लाते थे।

किन्तु लंका में दीर्घ काल तक राज्य किया दक्षिण-भारत के तामिल लोगों ने। लंका के इतिहास में दमिल राजाओं का उल्लेख सब से अधिक आता है। तमिल का ही रूपान्तर दमिल है।

जब देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोक पाटलिपुत्र में राज्य करते थे तब लंका में देवानांप्रिय तिष्य अथवा पुष्य (लड़का) लंका का सिंहासन सुशोभित करते थे। अशोक की धर्मयात्रा का हाल सुनकर तिष्य ने अशोक से प्रार्थना की कि आप हम पर कुछ अनुग्रह करें। फौज और तिजारत के द्वारा अपनी संस्कृति लादने के वे दिन नहीं थे। अशोक ने अपने प्राणप्रिय महिन्द्र (महेन्द्र) और संघमित्र को बौद्ध (श्रमण) दीक्षा देकर लंका में भेज दिया। भाई बहिन लंका पहुँच गये और उनके साथ

भगवान बुद्ध का उपदेश भी पहुँच गया। तिष्य राजा की अनुग्रह से उस बोधि वृक्ष की एक शाखा भी वे लंका ले गये जिसके नीचे बैठ कर बुद्ध भगवान ने जीवन का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान पाया था। जो हाल बौद्ध धर्म का हुआ वही इस बोधि वृक्ष का भी हुआ है। महेन्द्र की बोई हुई वह बोधि शाखा आज भी लंका में जीवित है जब भारतवर्ष में बोधि वृक्ष का कब का नाश हो चुका है।

जब हम लंका गये तब हमने बम्बई से ही कोलम्बो के लिये जहाज़ ले लिया। हमारा जहाज़ यात्रियों के लिये न था। केवल माल ले जाने वाला था। केवल महात्मा जी के लिये कम्पनी ने अपवाद करके हम सात आठ लोगों को जाने दिया। फिर पूछना क्या हम सारे जहाज़ के मालिक बन गये। जी चाहे उतना खारे पानी से नहाओ और जहाज़ के मुहरे से पिछाड़ी तक चाहे जितना घूमो। बीच में कहीं ठहरना था ही नहीं। बम्बई से निकले और कन्याकुमारी की उल्टी प्रदक्षिणा करके हम पूर्वी किनारे पर तूती कोरन पहुँच गये। वहाँ हमें जहाज़ बदलना पड़ा क्योंकि पेरम्बा (जहाज़) का पेट तीन दिन में भी खाली होने वाला न था। बीच में रेडिओ से राजा जी का तार आया कि "कब" हमने जहाज़ पर से जवाब भेजा "शनिवार दोपहर को"।

कोलम्बो सचमुच एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का बन्दरगाह है। सुन्दरता में यह शहर दुनिया के किसी भी बन्दरगाह से पीछे न रहेगा। जब भारत स्वतन्त्र होगा तब कोलम्बो की प्रतिष्ठा लन्दन से तनिक भी कम न होगी। जब कोलम्बो हाथ फैलाता है तब उसका दाहिना हाथ केपटाउन तक जाता है और बायाँ हाथ फ्रीमेन्टल तक। इस तरह से हिन्द महासागर का पूरा साम्राज्य उसी का है। कराँची से लेकर कलकत्ता और दक्षिण अफ्रीका से लेकर आस्ट्रेलिया तक सारा समुद्री व्यापार हम कोलम्बो के द्वारा ही कर सकेंगे।

लंका के ऊँचे ऊँचे वृक्ष जब छोटे मोटे जहाज़ों का रूप धारण करके इन सब समुद्रों में घूमते रहेंगे तब यह हमारा समुद्री व्यापार थोड़ी सी बड़ी कम्पनियों के हाथ में नहीं रहेगा। बल्कि छोटे मोटे हज़ारों व्यापारियों के हाथ में आ जायगा।

लंका की चाय और रबर तो सर्वथा मशहूर है ही, किन्तु वहाँ के गरम मसाले और वहाँ के रत्न कम महत्व के नहीं हैं। अगर अकेले दारचीनी पर ही विचार किया जावे तो वहाँ पर कागज़ जैसी पतली और एक से डेढ़ इंच मोटी दारचीनी भी मिलती है।

जितनी प्रकार की इमारती लकड़ी लंका में मिलती

है उतने प्रकार की लकड़ी शायद ही किसी और देश में मिलती हो।

लंका द्वीप, मालद्वीप टापू का ज़िक्र हिन्दुस्तान के जीवन में बहुत कम आता है। लङ्का में जाते ही ख्याल आता है कि मालद्वीप टापू मानो लङ्का का आँगन ही है। मालद्वीप की मछलियाँ सिंघाली लोगों का प्रधान भोजन है।

बौद्ध धर्म के कारण लङ्कावासियों के लिये हिन्दुस्तान पुण्य भूमि है। वहाँ के लोगों के मन में भारत के प्रति असीम प्रेम और श्रद्धा है। लङ्का की पुरानी राजधानी कैंडी में बुद्ध भगवान के एक दाँत के ऊपर एक मन्दिर बना हुआ है और सारी दुनिया के बौद्ध लोग उसका दर्शन करने आते हैं।

परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिये यह पूज्य भाव बहुत बड़ा और महत्व का तत्व है। किन्तु आधुनिक राज्य-व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था ने इन सब पवित्र भावों का नाश कर दिया है। भारत के मज़दूर लङ्का में जाकर रोज़ी कमाते हैं और वहाँ के लोगों को धन कमाने में सहायता देते हैं। अंग्रेज़ दोनों की मेहनत से लाभ उठाते हैं। इन गोरों में ऐसी कुछ शक्ति है कि चाहे जिस वक्त लोगों को आपस में लड़ा सकते हैं। अंग्रेज़ों के कहने से

सिंहाली लोग मान लेते हैं कि भारतवासी परदेशी हैं और लङ्का में जाकर वहाँ का धन लूट कर हिन्दुस्तान ले आते हैं। यह बात सही हो या न हो किन्तु यह सलाह देने वाले अंग्रेज़ कहां से और किस उद्देश्य से आये हैं इसका विचार लङ्कावासी नहीं करते। हमारी नीति तो यही होनी चाहिये कि लंका के लोगों के प्रेम और आश्वासन को प्राप्त करें। जैसे दूध में चीनी मिल जाती है वैसे ही लङ्का वासियों से हम मिल जावें।

लङ्का पर डच लोगों ने बहुत दिन तक राज्य किया। यहां तक कि आज भी लङ्का में डच-क़ानून जारी है। डच लोगों के अत्याचार से ऊब कर लङ्कावासियों ने अंग्रेजों को बुलाया और अब लङ्का ब्रिटिश साम्राज्य में एक अलग क्राउन कलोनी है। जब भारत स्वतन्त्र हो जायगा तब लङ्का को भी स्वतन्त्रता मिलेगी ही। तब स्वतन्त्र भारत और स्वतन्त्र लङ्का का स्वेच्छा-सहयोग दोनों के लिये कल्याणकारी होगा। भारत के बिना लंका का प्राकृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक महत्व नहीं है और लंका के बिना भारत की किसी भी दृष्टि से पूर्णता नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान की समुद्री रक्षा के लिये यदि समुद्री फौज रखनी ही पड़े तो उसका मुख्य केन्द्र ट्रिंकोमाली ही रहेगा। अगर हम हिन्द-महासागर पर पहरा देने के लिये कोई केन्द्र स्थापित करें

तो दक्षिणतम अन्तरीप देवेन्द्र (जिसे अंग्रेज़ लोग डुंड्रा हेड कहते हैं) पर ही रखना होगा।

भारत की कला का इतिहास भी लंका के बिना परिपूर्ण नहीं हो सकता। जो कला हम अजंता में पाते हैं वही लंका के श्रीगिरि (सिगिरिया) में पाई जाती है। जो कला दक्षिण-भारत में है वही अनुराधपुरा में सर्वत्र फैली हुई पाई जाती है।

खेती के लिये या पानी के प्रबंध के लिये जो नहर खोदने की कला भारत में पाई जाती है वही लंका में भी है। दुःख की बात इतनी है कि हम लोग अपना घर छोड़ कहीं जाते नहीं। जब जाते हैं तब आँखें खोल कर देखते नहीं हैं। जो देखते हैं उस पर विचार नहीं करते हैं। और जो विचार करते हैं तब राष्ट्रीय दृष्टि से उसे कार्यान्वित नहीं करते हैं। नहीं तो लंका से हमारा सारा सम्बन्ध प्राचीन है, हार्दिक है, अविभाज्य है। यह सिद्ध करने की ज़रूरत भी नहीं रहती। अगर हम इस एकता को अपने जीवन में दृढ़ करलें तो कोई विदेशी शक्ति अनबन या शंका पैदा नहीं कर सकती।



६६—मिहन्तले का अम्बस्थले दगोबा



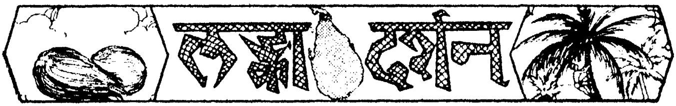
६७—बुद्ध भगवान ने लंका के प्राचीन नगरों में एक विचित्र जीवन का संचार किया। पुरानी बनी हुई यह उन्हीं की मूर्ति है।



६८—सम्राट पराक्रम राजपाट छोड़कर धर्मशास्त्रों के अध्ययन में आनन्द लेने लगा। ताड़ के पत्तों पर लिखा हुआ एक धर्म ग्रन्थ उसके हाथ में है।



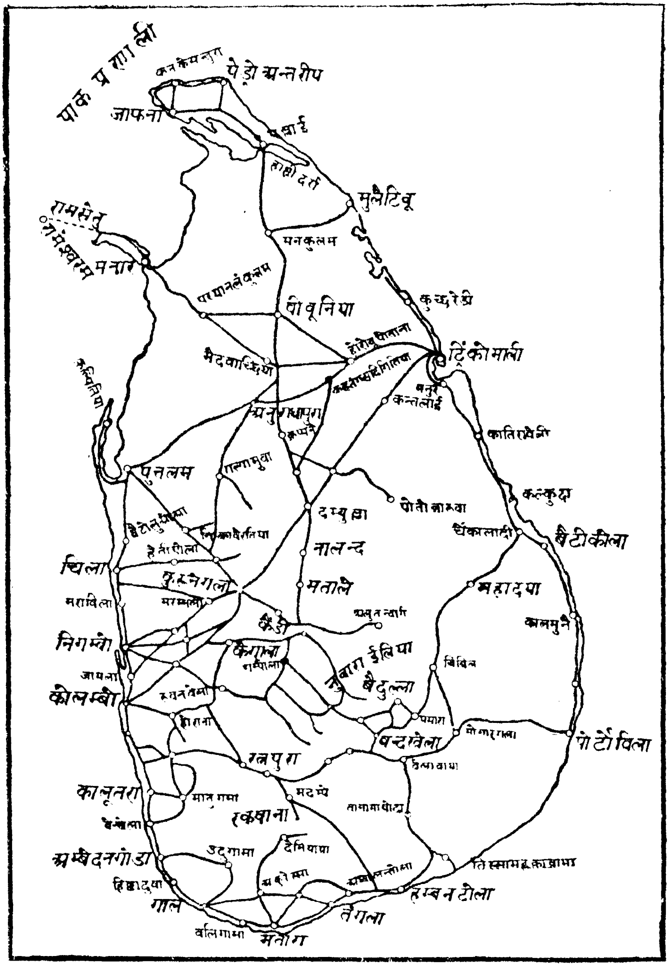
६९—कोलम्बो का एक दृश्य



मेरी लङ्का यात्रा

लंका की यात्रा अब से ११ वर्ष पहले दिसम्बर सन् १६२७ और जनवरी सन् १६२८ में की गई थी इसका संक्षिप्त वर्णन इस सम्बन्ध में पाठकों के लिये उपयोगी होगा। इसलिये इसके कुछ अंश यहां दिये जा रहे हैं।

सोलह दिसम्बर को मैंने इलाहाबाद से लंका के लिए प्रस्थान किया। हावड़ा, कटक, वाल्टेर के मार्ग से मद्रास पहुँचा। मद्रास से धनुष्कोटि के लिए दूसरे दर्जे का टिकट लेना आवश्यक था क्योंकि तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को लंका में प्रवेश करने के पहले मण्डपम् कैम्प में लगभग १० दिन ठहरना पड़ता है। यहीं डाक्टर का सर्टिफिकेट मिलने पर यात्री धनुष्कोटि में लंका के जाने वाले जहाज़ पर सवार हो सकता है। पहली बार कुछ वर्ष पहले मैंने मद्रास से तीसरे दर्जे का टिकट लिया था। अतः मुझे भी धनुष्कोटि से निराश होकर लौटना पड़ा। इस बार दूसरे दर्जे का टिकट होने से मण्डपम् कैम्प में डाक्टर ने फार्म भरने के लिए मुझे अपने क्लर्क के पास



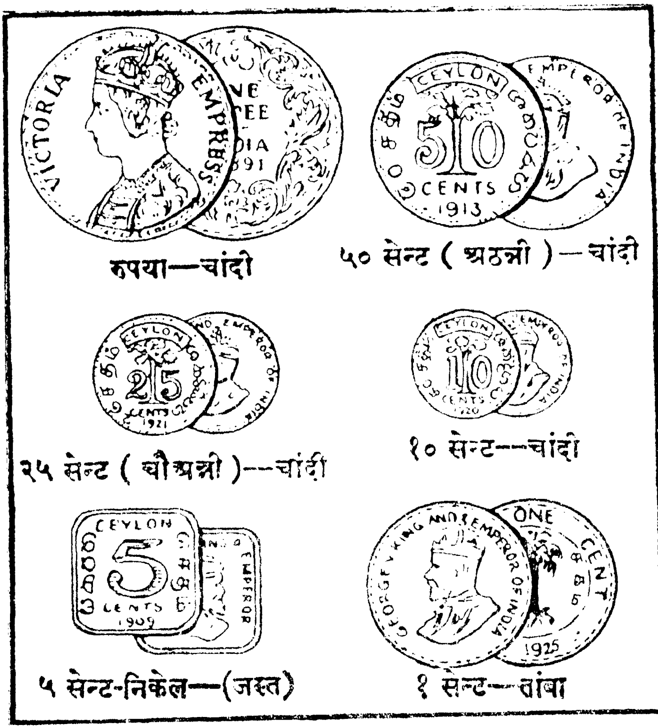
पाक प्रणाली
पेड्रो अन्तरीप
जाफना
मुलैटिवू
रामसेतु
मनार
मनकुलम
वावूनिया
ट्रिंकोमाली
कुच्चवेली
कन्तलाई
अनुराधापुर
पुत्तलम
दम्बुला
नालन्द
मताले
पोलोन्नरुवा
कल्कुडा
बैटीकौला
महादया
कालमुनै
चिलाव
मरविला
निगम्बो
कोलम्बो
कैगाला
बैदुल्ला
बन्दरवेला
पोटौविला
रत्नपुर
कालूतरा
रकवाना
उदगामा
अम्बलनगोडा
हिक्कादुवा
गाल
वलिगामा
मतारा
तंगाला
हम्बनटोटा

७०—लंका-मार्ग

भेज दिया। इस प्रकार मुझे लंका जाने की आज्ञा मिल गई। फार्म की शर्त यह थी कि ग्यारह दिन तक प्रत्येक दिन जहाँ कहीं मैं जाऊँ पोस्ट सर्जन के दफ्तर में स्वयं सूचना दूं। ऐसा न करने से १०००) रुपये जुर्माना और ६ महीने की कड़ी सजा हो जाने का डर था। लंका जाने की ख़ुशी में मैंने इस कड़ी शर्त को भी धन्य माना।

धनुष्कोटि में रेलवे लाइन का अन्त हो गया और सामने ही कर्ज़न नाम का जहाज़ लगा था। जहाज़ पर जाने के लिये एक सीढ़ी लगी थी। इससे मैं ऊपर चढ़ कर एक बेंच पर बैठ गया। इतने में एक अंग्रेज़ सर्जेन्ट आया। उसने मित्रता पूर्वक सलाम किया और विज़िटिङ्ग कार्ड लेकर पुलिस के दूसरे कर्मचारियों से मिला दिया। इतने में हिन्दुस्तानी सिक्का बदलने के लिए दलाल आया। मैंने ५) रुपये की खरीद (१०० सेन्ट=१) रुपया, ५० सेन्ट=एक अठन्नी, ७५ सेन्ट=१ चौअन्नी) और तीस रुपये के नोट बदल लिए। सीलोनी नोट कुछ बड़े थे उनकी पीठ पर हाथी और नारियल का चित्र बना था। लङ्का का आदर्श वृक्ष नारियल और आदर्श पशु हाथी ही है। एक घंटे के बाद जहाज़ ने चलने की सीटी दी और लङ्गर उठ गया। कुछ देर तक रामेश्वरम् का विशाल मंदिर दिखाई देता रहा, अन्त में वह भी ओझल हो गया।

लगभग दो घंटे में जहाज़ तलेमनार की जगह आ लगा और अब फिर नये पुलिस कर्मचारी और नये चुंगी वाले



७१— लङ्का के सिक्के

आ घुसे। मेरे पास कोई महसूली चीज़ न थी। इसलिए उन्होंने तुरन्त ही मेरे सामान पर खड़िया के निशान कर दिये। दरवाज़े पर इन्हें दिखाकर मैं लङ्का-तट पर उतरा।

तलेमनार कोई बड़ा नगर नहीं है। यहाँ केवल स्टेशन, स्टीमर-घाट और एक दो दुकान हैं। जहाज़ के आने जाने के समय शाम और सवेरे को कुछ भीड़ हो जाती है। वैसे यह सुनसान पड़ा रहता है। यहां की मुसलमानी दुकान पर नारियल को छोड़कर मेरे खाने योग्य और कोई चीज़ न थी। अतः मैंने नारियल मोल लिया। पानी की भी कमी थी।

पहले मैंने जाफना नगर के लिए टिकट लिया। ६ बजे गाड़ी चल दी। एक स्टेशन पर कुछ लोग सूखी मछलियों की तीन चार टोकरी लेकर चढ़ आये। इससे पूरे डब्बे में दुर्गन्ध फैल गई, लेकिन एक दो स्टेशन बाद वे उतर गये। मधवाच्छी जंकशन में गाड़ी बदलनी पड़ी। दूसरे दिन सवेरे ही गाड़ी जाफना पहुँची। शहर स्टेशन से कुछ दूर है। रास्ते में एक बड़ा हिन्दू मन्दिर पड़ता है। दर्शन करने वाले केवल एक धोती पहनते हैं और सब वस्त्र बाहर ही उतार देते हैं। आगे चल कर मैं अपने मित्र के घर पहुँचा। नहाने से पहले मैंने एक नाई से बाल बनवाये। मेरे सिर के बाल वहां के लोगों से भिन्न थे। इसलिये नाई को बहुत सावधानी करनी पड़ी। तामिल लोग माथे के ऊपर का आधा भाग अस्तुरे से मुड़ा देते हैं। शेष पर कैंची कहीं नहीं फिरती है और चुटीला बांध लिया जाता है। सिंहाली लोग प्रायः

सिर के बालों को सिक्खों की तरह रखते हैं लेकिन् दाढ़ी मुड़वा लेते हैं। कुछ लोग मूँछ भी मुड़वा डालते हैं। भिक्षु लोग दाढ़ी, मूँछ और सिर सभी का मुण्डन कराते हैं।

इधर हर एक घर के साथ एक बगीचा लगा हुआ है। कुएँ में पानी नज़दीक ही मिल जाता है। पानी ढेंकुली द्वारा निकाला जाता है। ढेंकुली में रस्सी की जगह बांस बंधा रहता है। घर लकड़ी के बने होते हैं और नारियल के पत्तों से छाये जाते हैं। घरों की चहार दीवारी चटाई या नारियल के पत्तों की बनी होती है।

स्नान के पीछे भोजन की तैयारी हुई। यहाँ की प्याज़ मिली हुई तरकारियाँ, भात, चाय और कहवा मुझे पसन्द न था। इसलिए मुझे दूध, केला, और पक्के आम दिए गये। लंका में दिसम्बर और जनवरी महीनों में भी पक्के आम मिलते रहते हैं। आज पानी बरस रहा था। इसलिए एक मोटर मंगाया गया। मोटर ड्राइवर सिंहाली था और उसका सहायक एक मूर था। जाफ़ना और उत्तरी लंका में अधिकतर तामिल बसे हुये हैं। सिंहाली बहुत कम हैं। जो सिंहाली इधर हैं वे प्रायः सभी कारीगर और मज़दूर हैं। मूर (मुसलमान) अधिकतर दुकानदार हैं।

मोटर पर सवार होकर पहले सूचना देने के लिये अस्पताल गया फिर यहाँ का बाजार और डच लोगों का

बनवाया हुआ पुराना किला देखा। यह किला बहुत सुन्दर है। इसके कुछ भाग अब भी ज्यों के त्यों बने हैं। बाहरी दीवार के बाद एक छोटे पुल से खाईं पार करनी पड़ती है। सामने एक बड़ा द्वार है। इसके ऊपर सन् १६८० खुदा हुआ है। लेकिन इसके भीतरी ओर १७८० लिखा है। वास्तव में इसी समय तक लंका में डच लोगों का प्रभुत्व रहा। इसके बाद अंग्रेज आये।

किले के पास ही नारियल का तेल पेरने का कारखाना है। यहाँ से कई छोटे छोटे द्वीप दिखाई देते है। इनमें आबादी भी हैं। इनके बीच में छोटी नावें चलती हैं।

जाफना में केवल ४० हजार मनुष्य रहते हैं। यह नगर बहुत ही फैला हुआ बसा है। कुछ लोग सिगार बनाने का काम करते हैं। जाफना से कुछ दूर उत्तरी सिरे पर कांग सेन-तुरई नगर है। इसके पास ही कीरीमलयकरि के प्रसिद्ध चश्मे हैं। कहा जाता है कि पुराने समय में एक रोग-ग्रस्त रानी सब तीर्थों में स्नान कर आई और उसका रोग दूर न हुआ। यहां स्नान करते ही वह अच्छी हो गई। अब भी खाल के रोग से पीड़ित लोग दूर दूर से यहां आते हैं। इस चश्मे का पानी बहुत ही निर्मल है। तली की सब चीजें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसमें भीतर ही भीतर समुद्र से पानी आता है और दूसरी ओर से

फिर समुद्र में ही बह जाता है। लेकिन इसके पानी में समुद्र का खारीपन नहीं है। इसके पास ही एक चोल्ट्री (धर्मशाला है)। इसके भीतर चित्रों द्वारा स्कन्द स्वामी की कथा दिखलाई गई है। रास्ते में चूर्णाश्रम नाम के गांव में बाजार लगा था। वर्षा होने के कारण कीचड़ तो बहुत हो गई थी फिर भी पान, हरी सुपारी, नारियल, अरुई, सकरकन्द, तरह तरह के शाक, सफेद बैगन, लौकी, चेचड़ा, लहसुन, प्याज, चावल, मसाले, मिर्च, रंगीन चटाई, नारियल के पत्तों से बने हुए बरतन और खिलौने आदि बहुत थे। सब कहीं मेहनत और ईमानदारी का परिचय मिल रहा था।

जाफना लौट कर कई स्कूलों और होस्टलों के दर्शन किये। विद्यार्थियों में धार्मिकता और सादगी बहुत है। प्रायः सभी विद्यार्थी नंगे सिर और नंगे पैर रहते हैं। वे तख्त पर या चटाई बिछाकर धरती पर ही सोते हैं। उनकी पढ़ाई का ढंग आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के अनुसार होते हुए भी उनकी देशभक्ति और गुरुभक्ति सराहनीय है। लेकिन व्यायाम की ओर उदासीनता और सिगरेट पीने की बुरी आदत ने उनकी शरीर को पोला बना दिया है। तहमत की तरह लपटी हुई धोती बच्चों में भी दौड़ने और तेज़ चलने का स्वभाव नहीं पड़ने देती, लेकिन ये लोग अपने घर का मोटा झोटा काम करने में नहीं शरमाते हैं।

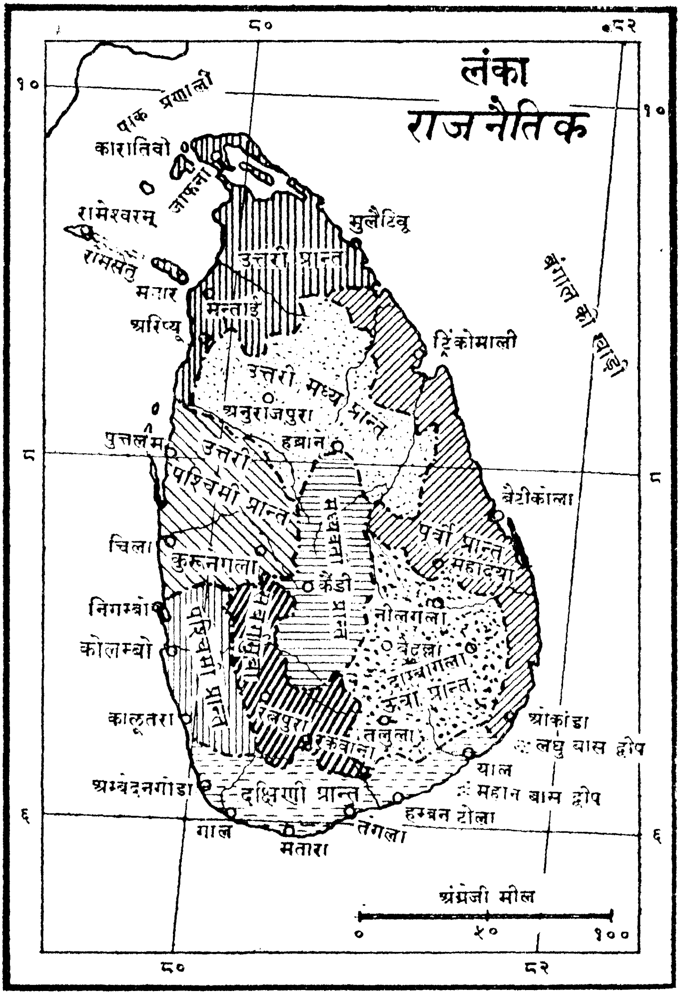
(२)

जाफना से अनुराजपुरा

जाफना में ही एक गवर्नमेन्ट-एक्सपेरीमेन्टल फार्म (खेत) है। कपास, ईख, मूली, हल्दी, मूंगफली, अनन्नास और दूसरी चीज़ों के उगाने का प्रयोग हो रहा है। कृषिविद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है।

जाफना की गेरुआ सड़कों, गहरी कंकड़ की खानों, ढालू खपड़ैलों और चौक पुरे हुए स्वच्छ द्वारों को छोड़कर दूसरे दिन मैंने अनुराजपुरा के लिए प्रस्थान किया। इधर स्टेशनों पर काफी भीड़ रहती है। लेकिन लोग एक दूसरे का ध्यान रखते हैं। परदे का अभाव है। आधी धोती पहिने और आधी धोती ओढ़े स्त्रियां पुरुषों की तरह गाड़ी में यात्रा करती हैं। स्टेशन का नाम बरामदे की दीवार और लालटेनों पर लिखा रहता है।

रेल के दोनों ओर कुछ धान के खेत और नारियल के बगीचे पड़ते हैं। फिर खुली हुई झाड़ियों का प्रदेश आता है। "एलीफैन्ट पास" (गजद्वार) के पास दृश्य बड़ा ही मनोहर है। अनूप के ऊपर कंकड़ पत्थर डाल कर रेल की सड़क ऊँची की गई है। कहा जाता है कि लंका के जंगली हाथी इस अनूप के दक्षिण में ही पाये



लंका
राजनैतिक
पाक प्रणाली
कारातिवो
जाफना
रामेश्वरम्
रामसेतु
मनार
मुलैटिवू
उत्तरी प्रान्त
मन्ताई
अरिप्पू
ट्रिंकोमाली
बंगाल की खाड़ी
उत्तरी मध्य प्रान्त
अनुराजपुरा
हबरान
पुत्तलम
उत्तरी पश्चिमी प्रान्त
बेटीकोला
मध्यवर्ती
पूर्वी प्रान्त
चिला
कुरूनगला
कैंडी
महादया
निगम्बो
नीलगला
कोलम्बो
पश्चिमी प्रान्त
बदुल्ला
उवा प्रान्त
रत्नपुरा
कालूतरा
तलुला
रकवाना
आकांडा
लघु बास द्वीप
याल
अम्बेदनगोडा
दक्षिणी प्रान्त
महान बास द्वीप
हम्बन टोला
गाल
मतारा
तंगला
अंग्रेजी मील
० ५० १००
८० ८२ १० ८ ६

७२—लंका—राजनैतिक

जाते हैं। दक्षिण को ज्यों ही रेल बढ़ती है वन घना और पेड़ लम्बे मिलते हैं। धरती फिर भी प्रायः समतल है। बीच बीच में बरसाती नाले फूट निकले हैं। कभी कभी ये नाले रेल की पटरी को भी ढा देते हैं। इसी से एक स्थान पर लिखा था कि बाढ़ से होशियार रहो। ११ बजे के लगभग गाड़ी मधवाच्छी जंकशन में पहुंची और प्रायः पौन घंटे रुकी। यहां से आगे वन ऐसा घना हो जाता है कि रेल की पटरी से तीन या चार गज़ से अधिक दूर जाना असम्भव है। स्टेशन पर ही कुछ दूर तक साफ़ जान पड़ता है।

एक बजे के लगभग अनुराजपुर में आ पहुंचा। मेरे एक मित्र कोलम्बो से यहां आने वाले थे। इसलिये मैं दो घंटे तक स्टेशन पर ही ठहरा रहा। यह स्टेशन तो छोटा ही है। पर यहां बहुत से लोग चढ़ते और उतरते हैं। वहां वर्षा अधिक होती है। यह जल मलेरिया पैदा करता है। इसलिये यात्री लोग स्टेशन का शुद्ध जल अपनी बोतलों में भर लेते हैं। भीड़ निकल जाने के बाद मैं भी अनुराधपुर या अनुराजपुर के महान भग्नावशेषों के दर्शन करने के लिये चल दिया। अभयगिरि इत्यादि कोई कोई विशाल दगोबा (बुद्धस्मारक अथवा मंदिर) गाड़ी में बैठे बैठे ही मीलों से दिखाई देने लगते हैं। ये अपनी जीर्णावस्था में भी लंका के प्राचीन और प्रभाव-

शाली इतिहास का परिचय देते हैं। जहां अब सघन वन है, वहीं पहले शक्तिशाली नगर थे जिनमें लाखों मनुष्य रहते थे। एक प्राचीन सिंहाली कहावत के अनुसार यहां बड़े बड़े भवन इतने पास पास थे कि पक्षी एक घर से दूसरे घर पर चलता हुआ अनुराजपूर से पोलन्नरवा में पहुंच जाता था, उसे कभी धरती पर नहीं उतरना पड़ता था। इसी प्रदेश के समीप लंका का अन्नागार था। यहां इतना अन्न पैदा होता था कि लाखों मनुष्यों का सहज ही में भरण-पोषण हो जाता था और बाहर से अन्न नहीं मँगाना पड़ता था। यह वैभव यहाँ डेढ़ हज़ार वर्ष तक बराबर बना रहा। इस दीर्घकाल में अनुराजपुर को ही लंका की राजधानी बने रहने का गौरव प्राप्त रहा। इसी गौरवकाल में आज से बाईस सौ वर्ष पहले सम्राट अशोक ने अपने प्रिय पुत्र महेन्द्र को यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये भेजा था। लंका के राजा श्रीमान् तिस्स ने जिस स्थान पर राजकुमार महेन्द्र का स्वागत किया था और बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी, वह स्थान भारतीय राजकुमार की पुण्य स्मृति में मिहन्तले (महेन्द्रालय) कहलाने लगा। यह स्थान अनुराजपुर से केवल आठ मील दूर है। अनुराजपुर से मिहन्तले को बराबर मोटर-गाड़ियाँ दौड़ा करती हैं। सड़क से पहाड़ी प्रायः आध मील दूर है। इस एक हज़ार फुट ऊँची पहाड़ी की चोटी

पर पहुँचने के लिये असंख्य सीढ़ियाँ हैं। यात्रियों की मण्डली में बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी श्रद्धालु बौद्ध होते हैं। अपने हाथों में सुगन्धित पत्र, पुष्प और फलों की भेंट लिये हुए वे बड़े उत्साह से ऊपर चढ़ते हैं और "साधु साधु" की ध्वनि करते जाते हैं। ऊपर पहुंच कर वे अम्बुस्तल दगोबा का दर्शन करते हैं। जहाँ महेन्द्र और देवानांप्रिय तिस्स महाराज की प्रथम भेंट हुई थी। कुछ और आगे महासेय दगोबा है जो बुद्ध भगवान के एक बाल पर बना है। पास ही रमणीक स्थान में युवराज महेन्द्र की प्रस्तरशय्या है। पीताम्बरधारी भिक्षुगण बड़े प्रेम से इनकी महिमा बताते रहते हैं। बुद्ध भगवान की जन्मभूमि से सम्बन्ध होने के कारण ये लोग मुझे बड़े प्रेम की दृष्टि से देखते थे। यद्यपि सिंहाली भाषा पुरानी मागधी हिन्दी भाषा का ही रूपान्तर है तथापि मैं इस भाषा के बोलने में असमर्थ था। पर मैं संस्कृत बोलता था जो भिक्षु लोग समझ लेते थे और वे पाली बोलते थे जो मैं समझ लेता था। इसी से लंका में मैंने जितना संस्कृत भाषा का प्रयोग किया उतना किसी भाषा का प्रयोग नहीं किया। सरल संस्कृत को साधारण लोग समझ लेते थे पर वे बोलने में असमर्थ थे।

अनुराजपुर स्टेशन से शहर की ओर जाने में पहले एक पुल के ऊपर से उथली पर तेज़ नदी को पार करना



७३—दुष्ट को लकड़ी के गेंदों से मार कर दंड दिया जा रहा है। लंका का विख्यात राजा राजसिंह (जिसने पुर्तगालियों के छक्के छुड़ा दिये थे और जिसने कोलम्बो और गाल को छोड़कर समस्त लंका पर अपना अधिकार जमा लिया था)

पड़ता था। बहुत से यात्री स्टेशन से आकर यहीं स्नान करते हैं। और ऊँचे किनारे के छायादार पेड़ों के नीचे कुछ देर आराम करते अथवा भोजन बनाते हैं। नदी का मार्ग सघन बन में है। जल पर समीपवर्ती बनस्पति और भूमि का असर ऐसा पड़ा है कि उसका रंग बादामी हो गया है। यही रंग दूसरी ओर के तालाबों का भी है। यह जल पीने वालों और नहाने वालों को मलेरिया ज्वर कर देता है। पुल से कुछ ही दूर आगे महाराज दुतगेमुनू का बनवाया हुआ कांस का महल है। बनाने के समय ईसा से १६१ वर्ष पूर्व यह भवन नौ मंजिला ऊँचा था। प्रत्येक मंजिल में रत्नों से सुशोभित सौ सौ कोठरियां थीं। इसके ऊपर पीतल के खपरैल थे और भीतर बढ़िया चित्रकारी थी। पर इस समय ऊँचे ऊँचे खम्भों की केवल पंक्तियां शेष रह गई हैं।

सड़क की दूसरी ओर पवित्र पीपल का दगोबा है। गया के पास जिस महाबोधि वृक्ष के नीचे बुद्ध भगवान को दैवी ज्ञान प्राप्त हुआ था उसकी एक शाखा महेंद्र की बहिन संघमित्रा यहां ले आई थी। उसी शाखा के लगाने से यह पेड़ बना है, और महाबोधि दक्षिण शाखा के नाम से प्रसिद्ध है। बौद्ध लोग इसे बड़ा पवित्र मानते हैं। पास ही बुद्ध भगवान की पद्मासन मूर्ति है। यहां धूप, दीप, फल और वस्त्रों की भेंट बराबर चढ़ा करती है। दाहिनी ओर

को मुड़ने से हम दूसरे पवित्र मार्ग पर आ जाते हैं। सैकड़ों वर्षों से कितने भक्तों ने इस मार्ग पर प्रदक्षिणा की है इसका अनुमान लगाना कठिन है। सड़क के सामने रुवनवेली दगोबा है। महाराज दुतगेमुनू ने इसे ईसा से पूर्व १६१ और १३७ के बीच में बनवाया था। इसे दगोबा के विराट् रूप को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। कई वर्षों से इसको मरम्मत हो रही है। यात्री लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार ईंटें लेकर चढ़ाते हैं। इसके ऊपर चढ़ने और परिक्रमा करने से विचित्र आनन्द आता है। हरे भरे बन के समुद्र में दूर दूर फैले हुये दगोबा टापू के समान ऊपर उठे हुये हैं। इस दगोबा के नीचे एक विचित्र पोकूना (जलाशय) स्नान करने के लिये बना है। पास ही दो बड़े बड़े चबूतरे हैं।

रुवनवेली के उत्तर में थूपाराम का दगोबा सबसे अधिक (२२३५ वर्ष) पुराना है। इसे स्वयं देवानांप्रिय तिस्स महाराज ने बनवाया था। अब से सत्तर वर्ष पहले एक भिक्षु ने चन्दे से रुपया इकट्ठा करके चूने से लेप करवाया था। यह बहुत छोटा दगोबा है। इसकी ऊँचाई केवल इक्कीस गज है। पूर्व की ओर सौ गज को दूरी पर तीन चार गज़ लम्बी शिला है जिस पर भिक्षु लोग अपने कपड़े रंगते थे। अधिक आगे उत्तर की ओर लंका रामदगोबा है। इसका उत्तरी किनारा बिल्कुल गिर

गया है। यहां से कुछ ही दूरी पर पुरानी गुफायें हैं। थोड़ा और आगे बढ़ने से जेताबन रामदगोबा के दर्शन होते हैं। यह केवल साढ़े सोलह सौ वर्ष पुराना और ढाई सौ फुट ऊँचा है। इसके समीप में ही विशाल बिहार है।

अभयगिरि लंका का सर्वोच्च दगोबा है। पहले यह दगोबा चार सौ पांच फुट ऊँचा था। अब यह गिरते गिरते दो सौ इकतीस फुट ऊँचा रह गया है। पर पत्थर की कटाई का काम इसुदमुनी दगोबा में देखा जा सकता है।

शहर बहुत ही साधारण है। शहर के भीतर कोई देखने योग्य स्थान नहीं है। यहां का पानी भी अच्छा नहीं है। अस्पताल में और रोगों की अपेक्षा ज्वर से पीड़ित रोगियों की संख्या सबसे अधिक है। मैंने पानी के बदले प्रायः हरे नारियल का रस ही पिया। जब प्यास लगी तो १० सेंट में एक नारियल मोल लेकर कटवा लिया और प्यास बुझा ली।



७४

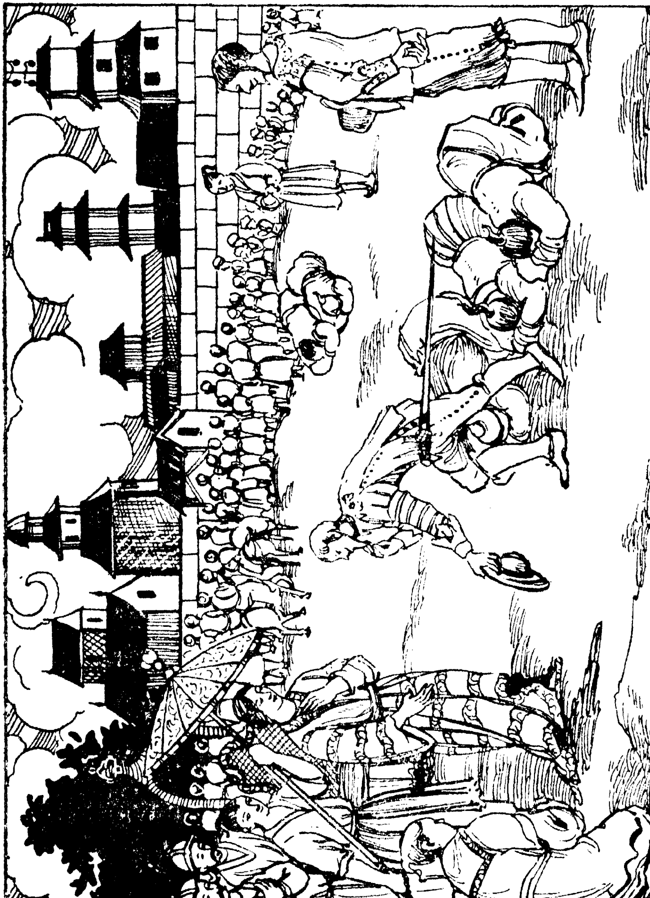
अनुराजपुरा से ट्रिंकोमाली

अनुराजपुरा से मैंने मोटर द्वारा ट्रिंकोमाली के लिए प्रस्थान किया, ६५ मील का किराया फी सवारी ३) था। इस लम्बी यात्रा में केवल चार पांच गाँव रास्ते में पड़े। इधर वर्षा अनिश्चित है। पुराने समय के राजाओं ने इस भाग की सिंचाई के लिये बड़े बड़े विशाल तालाव बनवाये। ट्रिंकोमाली के पास कुछ गरम चश्मे पड़ते हैं। नगर बहुत छोटा है, लेकिन घर साफ और सुथरे हैं। कहा जाता है कि यहाँ त्रिकोण-मलय नाम का एक मन्दिर था इसी से बिगड़ कर ट्रिंकोमाली पड़ा। यहाँ का बन्दरगाह बड़ा अच्छा है। किनारे का जल शान्त और गहरा है। बड़े बड़े जहाज़ आसानी से यहाँ सुरक्षित रह सकते हैं। यहाँ से एक रेलवे लाइन कोलम्बो को जाती है। सिगरिया का प्राचीन महल एक ओर छुट जाता है। कहीं कहीं नारियल, कोको, चाय, और रबड़ के बगीचे मिलते हैं। पोलगाहा में गाड़ी बदलने पर एक दम ऊँची नीची ज़मीन मिलती है। मार्ग में सात आठ सुरंगें भी आती हैं। इन सुरंगों के विषय में यह एक विचित्र भविष्यवाणी थी कि जो कोई पहाड़ को तोड़ कर कोलम्बो से केण्डी के लिये मार्ग बनावेगा वही लंका-भर में राज्य करेगा।

बहुत कुछ अंशों में यह बात ठीक निकली। तामिल लोगों का आक्रमण उत्तरी लंका तक ही परिमित रहा। पुर्चगाली और डच लोग प्रायः तट तक ही राज्य कर सके। सुरंग बनाने वाले केवल अंग्रेज सारे देश में राज्य कर सके।

अन्त में रात के साढ़े आठ बजे कैण्डी स्टेशन पर पहुँचा। बिजली की रोशनी, पानी के नल, पत्थर के विशाल मकान, सड़कों की सफाई और सजावट, मोटरों की संख्या आदि कई बातों से कैण्डी एक आलीशान नगर मालूम पड़ा। यहाँ का बाजार भी बहुत बड़ा है। कुछ कांसटेबुल काम चलाऊ अंग्रेजी बोल लेते हैं।

दलदमालिगावा (दांत का मन्दिर) ने ही वास्तव में कैण्डी नगर की नींव डाली। सन् ३११ ईस्वी में बुद्ध भगवान का यह दांत बड़े समारोह के साथ लंका में लाया गया। पहले यह दांत अनुराजपुर में रक्खा गया। पर जब उत्तरी लंका पर विदेशियों के आक्रमण होने लगे तो इस पवित्र दांत को सुरक्षित रखने के लिए १४ वीं सदी में मन्दिर को स्थापना हुई। कहा जाता है कि एक दांत जाफना के पुर्तगाली गवर्नर के हाथ लगा और गोआ के पादरी ने उसे जलवा दिया। पर बौद्ध भिक्षुओं का कहना है कि जो दांत जलाया गया वह नकली था। असली दांत इसी मन्दिर के भीतरी भाग में रक्खा है। इस सम्बन्ध में परेहरा नाम का उत्सव हर साल होता है।



१५—पुर्तगाली लोग लंका की रानी का स्वागत कर रहे हैं।

दैनिक पूजा में भी काफ़ी भीड़ रहती है। प्रातः ५ बजे ही सुरीले बाजे बजने लगते हैं। भक्त लोग फल, फूल आदि लेकर भीतर पहुँचते हैं। बारी बारी से उनकी भेंट स्वीकार की जाती है। मन्दिर के एक ओर रमणीक झील है जिसे लंका के एक अन्तिम राजा ने बनवाया था। दूसरी ओर विशाल महल है। महल के एक भाग में घर है जहां पीतल आदि के बर्तनों पर बढ़िया कारीगरी का नमूना देखा जा सकता है। पास ही प्रसिद्ध पुस्तकालय और ए० जी० का बंगला है। लंका में कलक्टर की जगह ए० जी० या सरकारी एजेंट होता है।

कैंडी से चार मील की दूरी पर पेरीडेनिया का प्रसिद्ध बोटेनीकल गार्डन है। महावली गंगा ने यहां ऐसा मोड़ बनाया है कि बगीचे के केवल एक ओर स्थल है और तीन ओर जल है। उष्ण कटिबंध में उगने वाले प्रायः सभी प्रसिद्ध पौधे और पेड़ यहाँ देखने को मिल जाते हैं। लौंग, इलायची, दालचीनी, कपूर, जायफल, चन्दन, ज़ैतून, काजू, अखरोट, लवेण्डर आदि तरह तरह के पेड़ यहां लगे हुए हैं। बगीचे के बायें सिरे के पास अजायबघर है। यहां भिन्न भिन्न उपयोगी पौधों का संग्रह है।

कैंडी से एक रुपया ६५ सेन्ट में टिकट लेकर मैंने नुवारा इलिया के लिए प्रस्थान किया। रास्ते का दृश्य

बड़ा सुन्दर है। धीरे धीरे मार्ग ऊँचा होता जाता है। सड़कें बड़ी सुन्दर हैं। इनमें अक्सर स्फाल्ट भी लगा रहता है। चाय और रबड़ के बगीचों तक मोटर बराबर पहुँचते रहते हैं। इन बगीचों में काम करने वाले अधिकतर कुली होते हैं। उनके पास बहुत ही कम कपड़े होते हैं। कभी कभी तो एक लंगोटी ही होती है। लड़के और लड़कियों को भी सबेरे से शाम तक चाय के बगीचों में इतना काम रहता है कि उन्हें पढ़ने का समय नहीं मिलता है। आगे चलकर गाड़ी नानोवा जंकशन पर पहुँची। यहाँ से नुवारा इलिया को छोटी पहाड़ी लाइन जाती है। ६ हज़ार फुट ऊंचा होने के कारण नुवारा इलिया नगर काफी ठंडा रहता है। नगर से पहाड़ी चोटी काफी ऊंचाई पर पड़ती है। रास्ते में जंगल है जिसमें जंगली जानवर भी रहते हैं। चोटी से दूर दूर का दृष्य दिखायी पड़ता है। नीचे उतर कर मैंने सीता इलिया और हकगाला बाग देखने के लिए मोटर किया। मार्ग का दृश्य बहुत ही सुंदर है। सड़क के दोनों ओर चाय के बगीचे और हरे भरे खेत हैं। कहा जाता है कि यहीं सीता जी ने अपने बन्दी जीवन के दिन बिताये थे। हकगाला गार्डेन में तरह तरह के पेड़ लगे हुए हैं। यहां से लौट कर मैं फिर नुवारा इलिया में आया और यहां से फिर लौट कर बैदुल्ला शहर के लिये प्रस्थान किया। यहां बुद्ध भगवान

का प्रसिद्ध मन्दिर है। सुपारी, फूल, नारियल आदि लेकर यात्रियों की टोली साधु साधु ध्वनि करती हुई दर्शन करने आती हैं। जब एक मण्डली पाठ समाप्त करती है तो दूसरी मंडली अपना पाठ आरम्भ कर देती है।

(४)

बैदुल्ला से बैटीकोला

दूसरे दिन मोटर लारी पर सवार होकर मैंने पूर्वी तट के प्रसिद्ध बन्दरगाह बैटीकोला के लिये प्रस्थान किया। यह नगर यहां से १२० मील दूर है। रास्ते में जंगल पड़ता है। जिसमें वेद्दा लोग रहते हैं। वेद्दा लोग भारतवर्ष के गोंडों से मिलते जुलते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन यक्ष लोगों की यह सन्तान है। इन्हीं का दर्शन करने के लिये मैंने यह यात्रा की। इस यात्रा को मैं कभी नहीं भूल सकता। इसमें मैं बाल बाल बच गया। जिस लारी पर मैं सवार था। उसमें भारी भारी गट्ठे लदे थे। कुछ मुसाफिर बैठे थे। इस लारी के साथ ही डाक वाली दूसरी लारी छुटी। इन दोनों लारियों में आगे निकल जाने के लिये दौड़ हो रही थी। कभी मेरी (सवारी लारी) मुसाफिरों को चढ़ाने-उतारने के लिये ठहरती और डाकलारी आगे बढ़ जाती और कभी डाक वाली लारी रास्ते के डाकखाने से डाक लेती और उतारती और

सवारी लारी आगे बढ़ जाती। एक बार ऐसा हुआ कि सवारी लारी का ड्राईवर एक दूसरे नवसिखिया ड्राईवर से गाड़ी चलवा रहा था। आगे एक छोटी नदी पर बिना घेरे का पुल बना हुआ था। मेरी लारी पुल के पास आयी इतने में ही डाक वाली लारी हार्न (घंटी) बजा कर पुल के पार निकल गई। मैंने अपनी लारी का लगभग एक गज भाग पुल के सिरे से बाहर निकलते देखा इतने ही में पूरी लारी पुल के नीचे गिर पड़ी। उपर से नीचे गिरते समय एक क्षण के लिए झूले का सा आनन्द आया। लेकिन गाड़ी नीचे पत्थरों से टकरायी और हम लोगों के सिर छत के लोहे से टकराने लगे। यही नहीं गाड़ी टकराकर एकदम उलट गई। फिर क्या था भारी भारी बोझ छाती पर आ गिरे। ऐसा मालूम पड़ता था कि लंका यात्रा ही नहीं वरन् संसार यात्रा यहीं समाप्त हो रही है। दैव योग से मेरी छाती के पास ही एक लोटा था। वह गट्ठरों के बोझ को संभाल रहा था। दूसरे मुसाफिर मुझ से भी बुरी दशा में थे। मरने का चीतकार हो रहा था। लेकिन एक दो मुसाफिर जोर लगा कर बाहर निकल आये। मैंने भी पूरा जोर लगाया और बाहर निकल आया सिर फुट गया था, एक जाँघ भी चलने योग्य न रही थी, पर डर था कि कहीं असहाय लोग वहीं न छोड़ दिये जायँ। इसलिए मैंने चेहरे को ऐसा सँभाला मानों

गंभीर चोट न लगी हो। डाक वाली गाड़ी ने भलमन्साहत की। वह आगे ठहर गई और उसने सवारीगाड़ी के मुसाफिरों को भी बिठा लिया। जिन मुसाफिरों की हालत बहुत ही बुरी हो गई थी वे रास्ते के 'महाओया' अस्पताल में छोड़ दिये गये। बीच बीच में दूध और दही लिये हुए लगभग साढ़े तीन बजे हम लोग तट के पास पहुँचे। अब दृश्य एकदम बदल गया। ताड़, नारियल, सुपारी, कटहल और आम के पेड़ों की अधिकता थी। यहीं ट्रंकोमाली से सीधे आने वाली गाड़ियों का मेल हुआ। एक घंटे के बाद हम लोग बैटीकोला पहुँच गये।

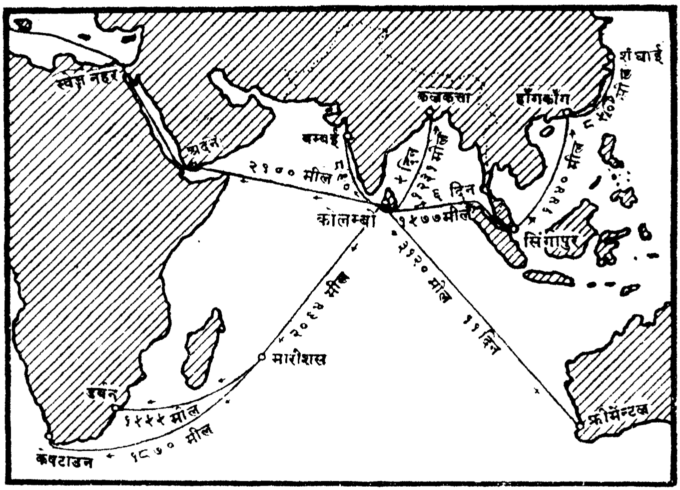
बैटीकोला नगर अनूप के एक द्वीप पर बसा है। नगर में पहुंचने के लिये एक छोटा सा पुल पड़ता है। पर कुछ मकान पुल के इस पार भी बने हुये हैं। सन् १६०२ ई० में डच लोग इसी नगर में पहले पहल यहां पर उतरे थे। इस समय कैंडी के सिंहाली राजा पुर्चगाली हमलों से बहुत ही पीड़ित हो रहे थे। इसलिये सिंहाली लोगों ने डच लोगों की मित्रता सहर्ष स्वीकार कर ली। पर अन्त में उन्हें मालूम हुआ कि वे लोग भी पुर्चगालियों की तरह लंका के धन के प्यासे हैं। बैटीकोला में इस समय भी गिरजाघर और कुछ मकान डच लोगों के ही ढंग के हैं। इस ओर की जलवायु कुछ अधिक

ख़ुश्क है। ग्रीष्म ऋतु में स्थल की ख़ुश्क हवाओं के चलने से यहाँ काफ़ी गर्मी पड़ती है। शीतकाल में समुद्री हवायें पानी बरसाती हैं। पीने का शुद्ध जल जगह जगह पर नलों से मिलता है। स्कूल, अस्पताल, मन्दिर, वाचनालय, मुद्रणालय आदि यहां उन्नति के अनेक निशान हैं। यहां का बन्दरगाह बहुत अच्छा नहीं है। पर उजाली रात में समुद्र का दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। तभी यहां की विचित्र मछलियों का गाना भी सुनाई देता है। दिन में स्थल की ओर जहाँ तक दृष्टि पहुंचती है सब कहीं नारियल के ही कुञ्ज दिखाई देते हैं। नारियल और मछली ही यहां की मुख्य उपज हैं।

लंका के और स्थानों की तरह यहां की दुकानों पर भी लाल मिर्च, प्याज, मसाला, सिगरेट, तेल, दाल और चावल तो बहुत था। लेकिन गेहूं का आटा कहीं नहीं मिलता है। कहीं कहीं सूजी अवश्य मिल जाती है। यहां से फिर मोटर द्वारा बैदुल्ला नगर को लौटा और रेल गाड़ी पर सवार होकर कोलम्बो के लिये चल दिया।

कोलम्बो शहर बहुत पुराना नहीं है। लेकिन लंका भर में यही सब से बड़ा और धनी नगर है। नगर बहुत दूर दूर खुला बसा हुआ है। सब से अधिक कारबार फोर्ट में होता है। यहीं सरकारी दफ्तर और सौदागरों की बड़ी दुकानें हैं। इसी भाग में गोवा के

पोर्चुगाली वाइसराय ने सन् १५१७ ईस्वी में किला बनाने की आज्ञा दी थी। सवा सौ वर्ष तक इस किले में पुर्चगाली लोगों को लंका के व्यापार और तटीय शासन की कुंजी दे दी। १६५६ में १२०० डच सिपाही किले के भीतर घुस आये और पुर्चगाली लोग



संसार के मार्गों के लिये कोलम्बो की महत्वपूर्ण और केन्द्रवर्ती स्थिति

७६

बाहर निकल भागे। डच लोगों ने किले को और भी मज़बूत बना लिया। लगभग १५० वर्ष तक लंका में इनकी तूती बोलती रही। १७९६ ईस्वी में इन्होंने बिना लड़े ही अंग्रेजों के हाथ में आत्मसमर्पण कर दिया। समस्त लंका पर अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो जाने पर

किले की आवश्यकता न रही। इसलिये अब से लगभग १५० वर्ष पहले किला तोड़ दिया गया। इस समय केवल किसी किसी दीवार का कुछ भाग शेष बचा है। किला न रहने पर भी यह मोहल्ला फोर्ट कहलाता है। फोर्ट से पूर्व की ओर पेटा या मध्यम श्रेणी के हिन्दुस्तानी सौदागरों का घना मोहल्ला है। यहाँ छोटी छोटी दुकानें हैं।

सिनामन गार्डन और दूसरे भागों के देखने के बाद मैं अजायब घर देखने के लिये गया। इसके आगे घास का मैदान और फुलवाड़ी है। छतरी आदि सामान दफ्तर के सामने ही छोड़ देना पड़ता है। इसके बदले में एक नम्बर मिलता है। इसे लौटालने पर सामान मिल जाता है। ऊपर चढ़ने पर यहां लंकासम्बन्धी नवीन और प्राचीन वस्तुओं का बड़ा संग्रह है।

एक स्थान में अस्त्र-शस्त्र का संग्रह है। भाला, बर्छी, तलवार, बन्दूक, तोप, धनुषबाण, गदा आदि देखने से सिंहाली लोगों की युद्ध-कुशलता का पता चलता है। मिट्टी के बर्तनों और वस्त्रों का संग्रह देखने योग्य है। हाथी दाँत, पत्थर, लकड़ी और धातु की चित्रकारी बड़े ही ऊँचे दर्जे की है। पुरातत्व विभाग ने यहां बहुत सी प्राचीन बुद्ध और शिव-मूर्तियों का संग्रह किया है। सिक्कों की सहायता से



७७—दारचीनी की छाल छुड़ाने का पुराना ढंग

लंका का बहुत कुछ इतिहास समझ में आ सकता है। एक ओर लंका के प्रसिद्ध पक्षी और पशुओं के ढाँचे हैं। मोती, घोंघे, सीप, स्पंज, ह्वेल, शार्क आदि समुद्री सम्पत्ति के भी यहाँ अनेक नमूने हैं। लंका में मिलने वाले भाँति भाँति के रत्न-शिलाओं के नमूनों से स्पष्ट हो जाता है कि लंका की खनिज सम्पत्ति महान् है। चित्रों का संग्रह पुराने इतिहास को हमारे सामने खड़ा कर देता है। जीने के पास ही दीवार पर रामायण की कथा चित्रों में अंकित है। सिगिरिया के चित्र बड़े ही मनोहर हैं। मिट्टी के तेल के प्रचार के पहले लंका में जिन दीपकों में नारियल का ही तेल जलाया जाता था, उनकी बनावट बड़ी ही अच्छी है। राज-पलँग, सन्दूक और फाटकों के शिल्प को देखकर आज भी आश्चर्य होता है।

संध्या के समय कोलम्बो के बन्दरगाह पर बड़ी भीड़ रहती है। दस पांच बड़े बड़े जहाज़ और बीसियों देशी नावें यहां प्रायः हर समय दिखाई देती हैं। एक बड़ी दीवार ने इस बन्दरगाह को जहाज़ों के ठहरने योग्य बना दिया है। दीवार कई गज चौड़ी है। इसके नीचे बनावटी शिलायें पड़ी हुई हैं। शाम के समय कोलम्बो के अधिकतर सभ्य लोग यहीं सैर करने आते हैं। गुजराती व्यापारी, सिंहाली भिक्षु, तामिल महाजन, यूरोपियन कोठी वाले और बर्घर क्लर्क आदि

यहीं सब लोग अपनी अपनी टोलियों में टहलते दिखाई देते हैं। बर्घर लोग एँग्लोइण्डियन लोगों से मिलते जुलते हैं। इनमें गरीब लोग पुर्तगाली और सिंहाली लोगों की वर्णसंकर सन्तान हैं। वे विगड़ी हुई पुर्तगाली भाषा बोलते हैं। जो लोग डच और सिंहाली लोगों के मिलने से बने हैं वे बिगड़ी हुई डच भाषा बोलते हैं और वकील, डाक्टर आदि का काम करते हैं। पहले लंका में पुर्तगाली पादरियों और डच शासकों का बड़ा ज़ोर था। इसीसे यहां के सिंहाली लोगों ने अपने बौद्ध नाम के साथ अक्सर इसाई नाम भी जोड़ दिया है। जब से यहां राष्ट्रीयता की लहर फैली तब से इस प्रथा में कुछ कमी हो चली है।

(५)

कोलम्बो से रत्नपुरा

कोलम्बो से रत्नपुरा के लिये छोटी लाइन जाती है। सबेरे सवा आठ बजे की गाड़ी से मैंने इस नगर के लिए प्रस्थान किया। केलानी घाटी की यह यात्रा बड़ी मनोहर है। मार्ग में नारियल के पत्तों से छाये हुए घर मिलते हैं। कुछ घरों में मिट्टी की दीवारें हैं। कुछ लकड़ी के खम्भे हैं। कहीं कहीं खपड़ैल से छाये हुए पक्के घर मिलते हैं। पक्की सड़कों पर स्फाल्ट लगा रहता

है। सड़क की मरम्मत करने के लिये जगह जगह कुलियों की लाइनें हैं। नारियल, धान, और बन क्रमशः चोटियों तक चले गये हैं। रबर के पेड़ अधिकतर छोटे हैं। और दूर से जामुन के समान मालूम पड़ते हैं। इनके पत्ते कुछ पतले हैं। पेड़ कुछ नीचे की ओर कटे हैं। इनसे गाढ़े दूध के समान सफेद रस नारियल के कटोरों में चूता रहता है। पौदा लगाने से पांच-छः वर्ष में रबर के बगीचे में ५०) महीने का लाभ होने लगता है। चाय के बगीचे से ४०) और नारियल के बगीचों से ३५) रुपये मासिक लाभ होता है। इनमें मजदूर हिन्दुस्तानी और सिंहाली हैं। लेकिन मालिक अधिकतर गोरे हैं।

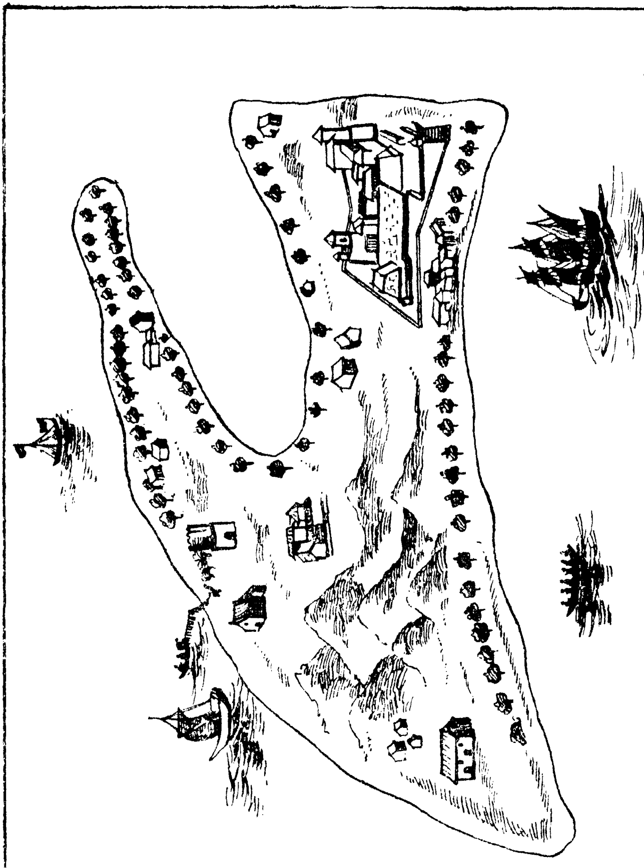


७८—डच (हालैंड) वालों का घंटा

पहाड़ी भाग में खनिज सम्पत्ति भी बहुत है। स्थान

स्थान पर, गेरुआ मिट्टी की चार गज गहरी मिट्टी की तह के नीचे स्लेट के सामान काला पत्थर खोदा जा रहा था। रत्नपुरा के पास रत्नों की अधिकता है। पहले ये धरातल के पास और नदियों की तली में ही मिल जाते थे। अब गहरा खोदना पड़ता है। खोदते खोदते जब रत्नों से मिली हुई मिट्टी मिलती है तो मिट्टी और कंकड़ ऊपर लाये जाते हैं फिर सबको पानी में डाल देते हैं। हल्की मिट्टी वह जाती है। भारी रत्न ठहर जाते हैं। फिर इन रत्नों के काटने और साफ करने के लिये रत्नपुरा शहर में भेज देते हैं। रत्नपुरा शहर कालू गङ्गा के ऊँचे किनारे पर बसा है। नदी में पानी कम रहता है। लेकिन भारी बाढ़ आने पर शहर के बहुत से भाग डूब जाते हैं। रत्नों को काटने और चमकीला बनाने की यहाँ जगह जगह पर छोटी छोटी दुकानें हैं। यह काम अधिकतर मूर लोगों के हाथ में है।

आज रविवार था। सवेरे को रेलगाड़ी में आने से तो आराम रहा। लेकिन लंका की कुछ रेलगाड़ियाँ भी रविवार को छुट्टियाँ मनाती हैं। जितनी रेलगाड़ियाँ और दिनों चलती हैं उतनी इस दिन नहीं चलतीं। रत्नपुर शहर छोटा है। यहाँ का स्कूल, मूर-मदरसा, थाना, कचहरी, अस्पताल, हिन्दू सभाभवन आदि देख चुकने पर भी काफ़ी दिन बच गया। अतः मोटर



७६—मनार द्वीप का सचित्र नक़शा

द्वारा पश्चिमी तट के पाणदुरे नगर के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में लाल और काली दुबली गायों और बकरियों के झुण्ड जगह जगह पर मिले। दूसरे दिन समुद्र के किनारे किनारे जाने वाली रेलगाड़ी से कोलम्बो के लिए चल दिया। लंका के पश्चिमी तट पर ज्वार-भाटा बहुत ऊँचा नहीं उठता है इसलिये रेलवे लाइन समुद्र से दूर नहीं है। अक्सर समुद्र के दर्शन होते रहते हैं। लगभग २ घंटे में मैं कोलम्बो पहुँच गया।

कुछ दिन फिर कोलम्बो के प्रसिद्ध स्थानों (हिन्दू-मन्दिर केलानी का बुद्ध मन्दिर) और समीपवर्ती स्थानों को देखने में बिताये। कोलम्बो में मोटर और रिकशा गाड़ियों की भरमार है। लेकिन भारी माल ढोने के लिये भैंसागाड़ी और बैलगाड़ी काम आती हैं। अक्सर ये छायी रहती है। भीड़ के कारण शहर के भीतर मोटर भी धीमी चाल से चलते हैं। कुछ भागों में ट्रैम गाड़ियाँ चलती हैं। लंका के और स्थानों की तरह यहाँ भी सरोंग (तहमत) या बिना कांच की धोती का पहनावा सर्व साधारण है। अधिकतर स्त्री-पुरुषों का सरोंग सफेद होता है। और कमर से एड़ी तक लटका रहता है। कुछ शौकीन लोग रंगीन या चारखाने वाला सरोंग पहिनते हैं। गरीब लोग काम करते समय और विद्यार्थी लोग खेलते समय इसे घुटनों तक समेट लेते हैं।

सरोंग के ऊपर साधारण लोग बनियाइन पहनते हैं। पढ़े लिखे लोग इसके ऊपर कोट और कमीज पहनते हैं। स्त्रियाँ एक सफेद झूला ही पहनती हैं। अधिकांश लोग नंगे शिर और नंगे पाँव फिरा करते हैं। कुछ लोग चट्टी और अंग्रेज़ी जूता पहनते हैं। यूरोपियन, वर्घर और कुछ देशी लोग एक दम विलायती पोशाक पहनते हैं। कोलम्बो से निगम्बो की यात्रा बड़ी सुन्दर है। मार्ग में नारियल और दूसरे पेड़ों की छाया प्रायः बराबर रहती है। इन्हीं कुञ्जों के बीच छोटे छोटे गांव बसे हुए हैं। निगम्बो के पास ही एक बहुत पुरानी झील है। यहाँ से कुछ ही दूरी पर धान के हरे हरे खेत और दाल चीनी के सुन्दर बगीचे हैं।

इस प्रकार लंका यात्रा समाप्त करके मैंने फिर कोलम्बो से हिन्दुतान के लिये प्रस्थान किया। स्टेशनों पर बेचने वाले लोग 'कुरुम्बे', 'दि दाने दिदाने', चुरट, सिगरेट, और रोटी रोटी की आवाज़ें लगा रहे थे। उनके ये शब्द और लंका का दृश्य आजकल भी कभी कभी सामने आ जाता है।

१७—यूगोस्लेविया, १८—ग्रीस, १६—इटली, २०—स्पेन, २१—पुर्तगाल, २२—जर्मनी, २३—हंगारी, २४—स्वीज़रलैंड, २५—चेकोस्लोवेकिया, २६—अल्सेस लारेन।

अफ्रीका—१—मिस्र, २—सूडान, ३—एबीसीनिया, ४—जेंजीबार और पम्बा, ५—मेडेगास्कर, ६—कीनिया ७—यूगांडा, ८—पूर्वी पुर्तगाली अफ्रीका, ९—बेल्जयन कांगो, १०—रोडेशिया, ११—दक्षिणी अफ्रीका, १२—पश्चिमी पुर्तगाली अफ्रीका, १३—नाइजीरिया, १४—सहारा, १५—मरक्को, १६—अल्जीरिया, १७—टयूनिस, १८—ट्रिपली, १६—लाइबेरिया, २०—मारीशस द्वीप।

उत्तरी अमरीका—१—कनाडा, २—न्यूफाउंडलैंड; ३—संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ४—मेक्सिको, ५—पनामा, ६—मध्य अमरीका, ७—पश्चिमी द्वीपसमूह।

दक्षिण अमरीका—१—कोलम्बिया, २—गायना, ३—वेनिज़ुवेला, ४—इक्वेडार, ५—पीरू, ६—बोलिविया, ७—चिली, ८—पेरेग्वे, ९—यूरुग्वे, १०—ब्रेज़ील, अर्जेन्टाइना।

आस्ट्रेलिया—१—आस्ट्रेलिया, २—टस्मेनिया, ३—न्यूज़ीलैंड, ४—न्यूगिनी, ५—फिजी द्वीप, ६—प्रशान्त महासागर के द्वीप।

अन्वेषक—१—मार्कोपोलो, २—कोलम्बस, ३—वास्को डि-गामा, ४—कुक, ५—लिविंग्सटन, ६—स्टैनली, ७—ड्रेक, ८—स्वेन हेडिन, ९—लारेंस, १०—पियरी, ११—नान्सेन।

नगर—१—प्रयाग, २—कलकत्ता, ३—बम्बई, ४—बनारस, ५—मद्रास, ६—लाहौर, ७—लन्दन, ८—पेरिस, ९—बर्लिन, १०—मास्को, ११—न्यूयार्क, १२—टोकियो, १३—बग़दाद, १४—क़ाहिरा, १५—यरूशलम, १६—मक्का, १७—पेकिंग १८—हांगकांग।

नदी—गंगा, यमुना, सिन्ध, नर्मदा, गोदावरी, महानदी, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, यांग्जी, ह्वांग हो, अमूर, दजला-फरात, वाल्गा, राइन, डेन्यूब, मिसीसिपी, एमेज़न, नील, कांगो, सेन्ट लारेंस।

पर्वत—हिमालय, अल्प्स, एँडीज, राकी।

नहर—स्वेज़, पनामा, चीन की शाही नहर (ग्रांड केनाल)।

कारबार—कागज़, लोहा, दियासलाई, मोटर, पेन्सिल, मिट्टी का तेल, पुतलीघर, जहाज, रेल, हवाई जहाज।

सभ्यता—वैदिक, असीरियाई, प्राचीन मिस्री, इन्का, माया, यूनानी, रोमन।

अग्रिम मूल्य एक प्रति का ।=), वार्षिक ४)रु०, समस्त पुस्तक माला का २०)रु०।

Published by the Editor (Pt. Ram Narain Misra, B. A.)
and Printed by R. S. Misra, at the Bhugol Press,
306, Jamuna Road, Allahabad.